# अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

जून २०२२

## कृतज्ञता

अग्निशिखा जून २०२२ वर्ष ५२, अंक ११, पूर्णांक ६२२

# विषय-सूची

## कृतज्ञता

*(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)*


| | |
|---|---|
| प्रार्थना/सम्पादकीय | ३ |
| कृतज्ञता—एक विरल गुण | ४ |
| अपने जीवन को कृतज्ञता से भर लो | ११ |
| कृतज्ञता का मार्ग | १९ |
| कृतज्ञता का आनन्द | २१ |
| कृतज्ञता की कुछ सूक्तियाँ | ३२ |
| कृतज्ञता के साथ श्रीअरविन्द का स्मरण करना | ३३ |


### पुरोधा


| | | |
|---|---|---|
| दैनन्दिनी | | ३७ |
| 'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन' : गहन विद्या | नवजातजो | ४० |
| कृतज्ञतापूर्वक मुस्कुराते रहो | श्री श्री रविशंकर | ४३ |
| किरन से एक मुकालमा (कविता) | हुमैरा राहत | ४४ |
| कृतज्ञतापूर्ण अमृत | मकरन्द दवे | ४५ |
| कृतज्ञता की मूर्ति | वन्दना | ४७ |
| सर्वस्व समर्पण | रवीन्द्रनाथ ठाकुर | ४९ |


***हर चीज़ कितनी सुन्दर, महान्, सरल और शान्त बन जाती है जब हमारे विचार भगवान् की ओर अभिमुख होते हैं और हम अपने-आपको कृतज्ञतापूर्वक भगवान् के अर्पण कर देते हैं।***

श्रीमाँ

# प्रार्थना

**२५ अक्तूबर १९१४**

हे प्रभो, तेरे प्रति मेरी अभीप्सा ने एक सामञ्जस्यपूर्ण, पूरी तरह खिले हुए और सुगन्ध से भरे सुन्दर गुलाब का रूप ले लिया है। मैं समर्पण की मुद्रा में दोनों बाँहें फैला कर उसे तेरी ओर बढ़ा रही हूँ और मैं तुझसे याचना करती हूँ : अगर मेरी समझ सीमित है तो उसे विस्तृत कर; अगर मेरा ज्ञान धुँधला है तो उसे आलोकित कर; अगर मेरा हृदय उत्साह से ख़ाली है तो उसे प्रज्वलित कर; अगर मेरा प्रेम तुच्छ है तो उसे तीव्र बना; अगर मेरी भावनाएँ अज्ञान-भरी और अहंकारपूर्ण हैं तो उन्हें 'सत्य' के अन्दर पूरी चेतना प्रदान कर और जो "मैं" तुझसे यह सब माँग रही हूँ वह हे प्रभो, एक छोटा-सा व्यक्तित्व नहीं है जो हज़ारों में खोया हुआ है। यह तो सारी पृथ्वी है जो उत्साह और उमंग से तेरे प्रति अभीप्सा कर रही है।

मेरे ध्यान की पूर्ण नीरवता में सब कुछ अनन्तता में विस्तृत हो जाता है और उस नीरवता की पूर्ण शान्ति में तू अपने प्रकाश की देदीप्यमान महिमा में प्रकट होता है। **श्रीमाँ**

सम्पादकीय : अधिकतर लोग कृतज्ञता का अर्थ मनुष्यों के साथ सम्बन्ध या भौतिक उपहारों के रूप में लेते हैं; यानी, किसी ने तुम्हारे साथ भला किया, तुम उसके प्रति कृतज्ञ हो गये, तुम्हें किसी ने कोई भौतिक चीज़ दी, तुम धन्य हो उठे। योग में कृतज्ञता चेतना की उस विशेष अवस्था को अभिव्यक्त करती है जो हमेशा समर्पण तथा विश्वास के साथ भगवान् की ओर मुड़ी रहती है, जो आन्तरिक हो या बाह्य, उसे प्रभु से जो उपहार मिलें उन्हें पाकर प्रसन्न और सन्तुष्ट होती है। वस्तुतः, कृतज्ञता की अवस्था में व्यक्ति जो कुछ भी उसके जीवन में घटित होता है उसे कृपा के आशीर्वाद तथा उसके उपहारों के रूप में ही लेता है।

# कृतज्ञता—एक विरल गुण

(छोटे-बड़े सभी के लिए एक कहानी)

**सद्‌गुणों के उत्सव में**

एक समय की बात है, एक भव्य महल था जिसके बीचोबीच एक गुप्त मन्दिर था। किन्तु आज तक उसकी देहली भी किसी ने पार नहीं की थी। और तो और, उसकी बाहरी चहारदीवारी तक भी पहुँचना मर्त्य प्राणियों के लिए प्रायः असम्भव था, क्योंकि महल ऊँचे बादलों पर खड़ा था और आदिकाल से विरले ही वहाँ का मार्ग ढूँढ़ने में समर्थ हुए थे।

यह था 'सत्य' का महल।

एक दिन, वहाँ एक उत्सव का आयोजन हुआ, मनुष्यों के लिए नहीं बल्कि उनसे अत्यन्त भिन्न प्रकार की सत्ताओं के लिए। इसमें वे छोटे-बड़े देवी-देवता आमन्त्रित थे जो इस पृथ्वी पर 'सद्‌गुणों' के नाम से पूजे जाते हैं।

उस महल के बाहरी भाग में एक बहुत बड़ा कक्ष था। उसकी दीवारें, फ़र्श और छत स्वयं प्रकाशमान थीं, तिस पर हज़ारों अग्नि-स्फुलिंगों से और भी जगमगा रही थीं।

यह था 'बुद्धि का महाकक्ष'। यहाँ फ़र्श के पास प्रकाश बहुत हलका था, नीलमणि के रंग का अति सुन्दर गहरा नीला रंग छत की ओर अधिकाधिक तेज़ होता गया था। छत में हीरों के शमादान झाड़-फ़ानूसों की तरह लटके हुए थे। उनके हज़ारों मुखों से आँखों को चौंधियाने वाली किरणें चारों ओर फूट रही थीं।

सद्‌गुण अलग-अलग आये पर शीघ्र ही अपनी-अपनी रुचि के अनुसार टोलियाँ बना कर बैठ गये। सभी प्रसन्न थे कि आज ऐसा दिन आया जब वे एक बार तो इकट्ठे हो सके। वे साधारणतः इस जगत् में और अन्य जगतों में बिखरे रहते हैं, परायों की भीड़ में छितरे रहते हैं।

इस उत्सव की अध्यक्षता की 'दिल की सच्चाई' ने जिसका वेश जल के समान निर्मल था, उसके हाथों में एक घनाकार, अति विशुद्ध स्फटिक था। उस स्फटिक से वस्तुएँ वैसी दिखलायी देती थीं जैसी वे वास्तव में थीं, जैसी वे साधारणतया प्रतीत होती हैं उससे सचमुच में बहुत ही भिन्न,

क्योंकि उसमें वस्तुएँ हूबहू, बिना किसी विकृति के प्रतिबिम्बित होती थीं।

उसके पास ही दो मूर्तियाँ विश्वस्त अंगरक्षकों की तरह खड़ी थीं; एक थी 'विनम्रता', उसका भाव आदरपूर्ण और साथ ही गर्वीला था, और दूसरी ओर उन्नत ललाट, उज्ज्वल चक्षु, दृढ़ हास्यपूर्ण अधर, प्रशान्त, निश्चिन्त भंगिमावाला 'साहस' था।

'साहस' के समीप, उसके हाथ में हाथ डाले, बुरके में लिपटी एक नारी खड़ी थी। केवल उसकी तीक्ष्ण आँखें ही घूँघट को भेद कर चमकती हुई दीख पड़ती थीं। वह थी 'सावधानता'।

सबके बीच एक-दूसरे के पास आती-जाती, फिर भी हर समय सबके निकट दीखती थी 'उदारता'—एक ही साथ सतर्क एवं शान्त, कर्मरत एवं विवेकपूर्ण। उस समूह में वह जिधर निकल जाती उधर ही अपने पीछे उज्ज्वल मृदु प्रकाश की रेखा छोड़ती जाती थी। यह प्रकाश जो उससे छिटक कर विकीर्ण हो रहा था वास्तव में उसे अपनी श्रेष्ठ सखी, चिर सहचरी और जुड़वाँ बहन 'न्यायपरता' से मिल रहा था, किन्तु वह उसके पास सूक्ष्म रूप में, अधिकतर दृष्टियों से ओझल रह कर आ रहा था।

'दया', 'धैर्य', 'सौम्यता', 'अनुकम्पा' और ऐसे अनेकों की उज्ज्वल सेना 'उदारता' को घेरे हुए थी।

सभी आ चुके थे। कम-से-कम सबकी ऐसी धारणा थी।

किन्तु यह लो, वह कौन है? स्वर्ण-द्वार पर हठात् एक नवागन्तुक!

द्वार पर नियुक्त द्वारपालों ने बड़ी कठिनाई से उसे अन्दर आने दिया था। न तो उन्होंने उसे कभी पहले देखा था और न ही उसकी आकृति में उन्हें कोई प्रभावशाली चीज़ लगी।

वह सचमुच बहुत कम उम्र की थी, उसकी देह दुबली-पतली और सफ़ेद पोशाक साधारण, बल्कि ग़रीब जैसी थी। वह डरती-सी, झिझकती-सी, कुछ डग आगे बढ़ी। पर स्पष्ट ही वह अपने को ऐसी वैभवशाली उज्ज्वल भीड़ के बीच पाकर खो-सी गयी। वह ठिठक गयी, उसे पता न था कि किसकी ओर जाये।

उधर 'सावधानता' अपने साथियों से कुछ परामर्श करके उनके अनुरोध पर अनजाने मेहमान की ओर बढ़ी। वह ज़रा गला साफ़ करके, जैसा कि दुविधा में पड़े लोग थोड़ा सोचने के लिए करते हैं, उसकी ओर अभिमुख

होकर बोली : "हम सब जो इस महल में इकट्ठे हुए हैं एक-दूसरे के नाम और गुण जानते हैं। आपको आते देख कर हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है। आप हमें विदेशी-सी प्रतीत हो रही हैं। कम-से-कम ऐसा नहीं लगता कि आपको पहले कभी देखा हो। क्या आप यह बताने की कृपा करेंगी कि आप कौन हैं?"

नवागता ने लम्बी साँस लेते हुए उत्तर दिया : "हाय! मुझे आश्चर्य नहीं कि मुझे इस प्रासाद में विदेशी माना जा रहा है, क्योंकि मैं कदाचित् ही कहीं आमन्त्रित होती हूँ।

"मेरा नाम है 'कृतज्ञता'।"

**'श्रीमातृवाणी'** खण्ड २, पृ. ६-८

## निष्काम, निस्स्वार्थ क्रिया चैत्य की ही क्रिया है

पशुओं में एकदम प्रारम्भिक मन होता है। मनुष्यों की तरह उन्हें निरन्तर विचार तंग नहीं किया करते। उदाहरण के लिए, तुम उनके साथ भलाई करो तो उन्हें सहज कृतज्ञता का अनुभव होता है, जब कि मनुष्य सौ में से अट्ठानबे बार यह सोचने लगते हैं कि इस तरह भलाई करने में व्यक्ति का क्या स्वार्थ हो सकता है। यह मानसिक ऊहापोह की बड़ी दुर्दशाओं में से एक है। पशु इससे मुक्त हैं, तुम उनके साथ भलाई करो तो वे सहज रूप में कृतज्ञ होते हैं। और उन्हें विश्वास होता है। तो उनका प्रेम इन चीज़ों से बना होता है और वह बहुत प्रबल आसक्ति का रूप ले लेता है, तुम्हारे निकट रहने की अदम्य आवश्यकता के रूप में।

कुछ और चीज़ भी है। अगर मालिक सचमुच अच्छा हो और जानवर वफ़ादार हो तो उनमें चैत्य और प्राणिक शक्तियों का आदान-प्रदान होता है जो जानवर के लिए एक अद्‌भुत चीज़ है और उसे बहुत तीव्र हर्ष प्राप्त होता है। जब वे इस तरह से तुम्हारे बहुत नज़दीक रहना चाहते हैं, जब तुम उन्हें पकड़ कर उठाते हो तो उनके अन्दर से वही स्पन्दन उठता है। तुम उन्हें जो शक्ति देते हो—प्यार और दुलार का बल, संरक्षण आदि—उन्हें वे अनुभव करते हैं और इससे उनके अन्दर गहरा लगाव पैदा होता है। कुछ उच्चतर पशुओं में, जैसे कुत्ते, हाथी और घोड़े तक में, यह बहुत आसानी से निष्ठा की एक विलक्षण आवश्यकता को पैदा करता है (और

वह मन के तमाम तर्क-वितर्कों और दलीलों के द्वारा विकृत नहीं होता)। वह बहुत सहज और अपने साररूप में बहुत शुद्ध होता है—बहुत ही सुन्दर।

मनुष्य के मन की क्रियाओं ने अपनी प्रारम्भिक अवस्था में, अपनी पहली अभिव्यक्ति में बहुत-सी चीज़ें बिगाड़ दी हैं जो पहले बहुत अच्छी थीं।

स्वभावतः, यदि मनुष्य ज़्यादा ऊँचे स्तर पर उठे और अपनी बुद्धि का सदुपयोग करे तो चीज़ें ज़्यादा मूल्यवान् बन सकती हैं। लेकिन इन दोनों के बीच एक मार्ग है जिसमें मनुष्य अपनी बुद्धि का बहुत ही अशोभनीय और निम्न कोटि का उपयोग करता है। वह उसे हिसाब-किताब का, दूसरों पर अधिकार जमाने का, छलने का यन्त्र बना लेता है और तब यह बहुत भद्दी चीज़ बन जाती है। मैंने अपने जीवन में ऐसे जानवरों को देखा है जिन्हें मैंने बहुत-से मनुष्यों से बहुत ऊँचा माना था, क्योंकि उनमें वह गन्दा हिसाब-किताब, औरों को धोखा देकर लाभ उठाने का भाव बिलकुल न था। कुछ जानवर ऐसे होते हैं जो इस चीज़ को पकड़ लेते हैं—मनुष्यों के सम्पर्क के कारण पकड़ते हैं—लेकिन ऐसे भी हैं जिनमें यह चीज़ होती ही नहीं।

निष्काम, निस्स्वार्थ क्रिया संसार में चैत्य चेतना के सबसे सुन्दर रूपों में से एक है, लेकिन व्यक्ति मानसिक क्रिया-कलाप की सीढ़ी पर जितना ही उठता जाता है, यह क्रिया उतनी ही विरल होती जाती है। क्योंकि बुद्धि के साथ ही आते हैं कौशल और चालाकियाँ, भ्रष्टाचार और हिसाब-किताब। उदाहरण के लिए, जब एक गुलाब खिलता है तो वह सहज रूप में खिलता है, केवल सुन्दर होने के आनन्द के लिए, सुगन्ध देने, जीवन के आनन्द को अभिव्यक्त करने के लिए खिलता है और वह हिसाब-किताब नहीं करता, उसे इस सबसे कोई लाभ नहीं उठाना होता : वह ऐसा इतने सहज भाव से करता है, होने के, जीने के आनन्द में करता है। मनुष्य को लो, कुछ थोड़े-से अपवादों को छोड़ कर, जैसे ही उसका मन सक्रिय होता है, वह अपनी सुन्दरता और चालाकी से लाभ उठाना चाहता है; वह उससे कुछ प्राप्त करना चाहता है, लोगों की प्रशंसा या इससे कहीं अधिक घिनौनी चीज़ पाना चाहता है। फलतः, चैत्य-दृष्टि से गुलाब मनुष्य से ज़्यादा अच्छा है।

**'श्रीमातृवाणी'** खण्ड ५, पृ. २६४-६६

*भगवान् की इच्छा के प्रति पूर्ण आज्ञाकारिता होनी चाहिये।*

## अनुकम्पा और कृतज्ञता चैत्य गुण हैं

तत्त्वतः अनुकम्पा और कृतज्ञता चैत्य गुण हैं। वे चेतना में तभी प्रकट होते हैं जब चैत्य सत्ता क्रियात्मक जीवन में भाग लेती है।

प्राण और भौतिक उन्हें दुर्बलताओं के रूप में अनुभव करते हैं, क्योंकि वे उनके संवेगों की मुक्त अभिव्यक्ति को दबा देते हैं, जो सामर्थ्य की शक्ति पर आधारित होते हैं।

हमेशा की तरह, जब मन अपर्याप्त रूप से प्रशिक्षित होता है, तो प्राण सत्ता का साथी और भौतिक प्रकृति का दास होता है, इस प्रकृति के विधान अपनी अर्धचेतन यान्त्रिक प्रक्रिया में इतने अभिभूत करने वाले होते हैं कि, मन उन्हें पूरी तरह समझ नहीं पाता। जब मन पहली चैत्य गतियों की अभिज्ञता में जागता है तो वह अपने अज्ञान द्वारा उन गतियों को विकृत कर देता है। वह अनुकम्पा को दया में या अपने अच्छे-से-अच्छे प्रयास में, उसे उदारता में, और कृतज्ञता का बदला चुकाने की इच्छा में बदल देता है और फिर धीरे-धीरे मान्यता देने और समादर करने की सामर्थ्य में बदल देता है।

जब सत्ता में चैत्य चेतना सर्वसमर्थ हो तभी उन सबके लिए जिन्हें किसी भी रूप में सहायता की आवश्यकता हो अनुकम्पा, और जो कुछ किसी भी रूप में भागवत उपस्थिति और कृपा को प्रकट करता है उसके प्रति कृतज्ञता अपने मौलिक उज्ज्वल शुद्ध रूप में प्रकट होती है। तब अनुकम्पा में त्यक्त गौरव का भाव या कृतज्ञता में हीनता का कोई पुट नहीं होता।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १५, पृ. ३०९

## कृतज्ञता और प्रेम के स्पन्दन समान होते हैं

... सभी गतियों में, जो गति शायद सबसे अधिक आनन्द देती है, ऐसा अमिश्रित आनन्द जिसमें अहंकार की छूत नहीं लगी होती, वह है कृतज्ञता का सहज भाव।

यह बहुत विशेष भाव होता है। यह प्रेम नहीं है, यह आत्म-समर्पण भी नहीं है... यह बहुत **पूर्ण** आनन्द है—लबालब हर्ष और आनन्द।

कृतज्ञता का यह स्पन्दन बहुत विशेष होता है। यह ऐसी चीज़ होती है जो तुम्हारे अन्दर विस्तार ले आती है, जो तुम्हें भर देती है—कितना

उत्साहपूर्ण होता है यह स्पन्दन!

निश्चित रूप से, मानव चेतना की पहुँच में जितनी क्रियाएँ हैं उनमें से जो उसे उसके अहंकार से अधिकाधिक बाहर निकाल लाती है वह है, कृतज्ञता की क्रिया।

और जब वह कृतज्ञता बिना किसी प्रयोजन के, यानी जब वह स्वयं सृष्टि के अस्तित्व के प्रति हो... तब कितनी ही बाधाएँ चुटकी बजाते ही ग़ायब हो जाती हैं। *(श्रीमाँ कृतज्ञता के स्पन्दन पर देर तक ध्यान लगाये रखती हैं)* जब तुम उस स्पन्दन की पूरी पवित्रता में प्रवेश पाने में समर्थ होते हो तो तुरन्त तुम्हें पता लग जाता है कि इसमें ठीक वही गुण हैं जो 'परम प्रेम' के स्पन्दन में होते हैं : वह स्पन्दन दिशाविहीन होता है, अर्थात् चारों तरफ़ व्याप्त होता है। वह ऐसी चीज़ नहीं होती जो एक से दूसरी में जाती है, यहाँ से वहाँ जाती *(नीचे से ऊपर का संकेत)* या इधर-उधर घूमती है... वह *(गोलाई का संकेत)* **एक साथ सब जगह और सम्पूर्ण रूप में** होती है।

मेरे कहने का मतलब यह है कि कृतज्ञता की इस क्रिया के दो छोर नहीं होते, यानी यह नहीं कि यह एक सिरे से दूसरे सिरे, फिर दूसरे से पहले सिरे पर आना-जाना करती हो; यह ऐसा स्पन्दन है जो 'परम प्रेम' के स्पन्दन के समान होता है जो एक साथ दसों दिशाओं में रह सकता है।

यह स्पन्दन स्वयं अपने अस्तित्व के आनन्द के लिए, स्वयं अपने अस्तित्व में रहता है। (मुझे शब्दों का प्रयोग करना पड़ रहा है, शब्द बहुत कुछ बिगाड़ देते हैं) यह तो साक्षात् **प्रेम** होता है।

मनुष्यों के लिए तो किसी भी चीज़ के हमेशा दो सिरे होते हैं—आरम्भ और अन्त। और ये दो छोर ही उनके लिए समस्त अस्तित्व का कारण हैं और प्रत्येक चीज़ इन्हीं दो सिरों के चारों ओर चक्कर लगाती है *(श्रीमाँ अपना सिर नकारात्मकता में हिलाती हैं)*, लेकिन बात ऐसी नहीं है। इसका अर्थ बस यही है कि मनुष्य अपनी साधारण बाहरी चेतना में इन दो सिरों के परे कुछ नहीं समझ सकता—उसके लिए तीन ही आयाम हैं, चौथे की बात सोचना अभी तक सम्भव नहीं है। लेकिन हम जानते हैं। सार तत्त्व में **प्रेम** वह नहीं है जिसे मनुष्य—अपने उच्चतम रूप में ही सही—प्रेम के नाम से पुकारता है। समान बात कृतज्ञता पर भी लागू होती है।

अन्ततः, कहा जा सकता है कि कृतज्ञता हलका-सा रंग लिये, 'प्रेम' ही का तात्त्विक 'स्पन्दन' है।

२१ दिसम्बर १९६३ *एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से*

**साधक के लिए प्रार्थना**

मुझे मेरे क्रोध से, अकृतज्ञता और मूर्खताभरे दर्प से मुक्त कर। मुझे शान्त, विनम्र और कुलीन बना। वर दे कि मैं अपने कर्म में और अपनी सभी गतिविधियों में तेरे ही दिव्य नियन्त्रण का अनुभव करूँ।

*

मैं प्रार्थना करता हूँ कि मैं सभी हठधर्मिता और स्वाग्रही-भाव से मुक्त हो जाऊँ ताकि मैं श्रीमाँ का विनीत तथा आज्ञाकारी सेवक बन सकूँ, उनके कार्य के लिए उपयुक्त यन्त्र बन सकूँ और मैं प्रार्थना करता हूँ प्रभो, कि मैं जो कुछ करूँ उनके प्रति समर्पित हो कर करूँ और सदैव उनका पथ-प्रदर्शन पाता रहूँ।

*

प्रभो, वर दे कि आज से मैं एक सुदृढ़ निश्चय के साथ अपने अन्दर से सभी भूलों और दोषों को निकाल बाहर फेंक दूँ और वर दे कि मैं इस कार्य में ऊर्जा तथा अध्यवसाय के साथ तब तक लगा रहूँ जब तक कि मैं इसमें पूरी तरह से सफल न हो जाऊँ। वर दे कि मैं समस्त घमण्ड, झगड़ालू-प्रवृत्ति, आत्म-अहंकार और दर्प से पिण्ड छुड़ा लूँ; वर दे कि मैं श्रीमाँ का विरोध कभी न करूँ, हमेशा उनकी आज्ञा का पालन करूँ; वर दे कि मैं न कभी दूसरों से ईर्ष्या करूँ न विद्वेष; अपशब्द, अभद्र व्यवहार, मिथ्यात्व, आत्म-ख्याति, माँग, असन्तोष और शिकायत के चंगुल से निकल जाऊँ। वर दे कि मैं सबके साथ मैत्री का व्यवहार करूँ, किसी के भी प्रति कभी दुर्भावना न रखूँ।

प्रभो, वर दे कि मैं श्रीमाँ का सच्चा बालक बन सकूँ।

श्रीअरविन्द के पत्रों से

# अपने जीवन को कृतज्ञता से भर लो

## भागवत कृपा तथा प्रेम के प्रति कृतज्ञ रहो

यदि कोई मनुष्यों का जीवन, कर्म और हृदय देखे, जैसे कि वे हैं, तो उसे उस सारी घृणा, अवज्ञा, अथवा, कम-से-कम उदासीनता को देख कर उचित रूप में ही आश्चर्य होगा जो इस असीम भागवत प्रेम के बदले में लौटायी जाती है जिसे भागवत करुणा धरती पर उँडेलती है—उस भागवत प्रेम के बदले में, जो संसार को भागवत आनन्द की ओर ले जाने के लिए यहाँ प्रत्येक क्षण कार्य कर रहा है और जिसे मानव हृदय में इतना कम प्रत्युत्तर मिलता है। परन्तु लोग दया दिखाते हैं केवल दुष्टों के प्रति, अधमों के प्रति, अवाञ्छनीयों के प्रति, असफल और असफलताओं के प्रति—वास्तव में इससे दुष्टता और असफलता को एक प्रकार का बढ़ावा मिलता है।

यदि कोई समस्या के इस पहलू पर कुछ अधिक विचार करे तो शायद उसे घृणा का उत्तर प्रेम से देने की आवश्यकता पर बल देने की ज़रूरत कम होगी, क्योंकि यदि मानव हृदय अपने अन्दर निरन्तर उँडेले जाने वाले भागवत प्रेम का प्रत्युत्तर सम्पूर्ण सच्चाई के साथ, समझने वाले और मूल्य आँकने वाले हृदय की स्वाभाविक कृतज्ञता के साथ देता तो जगत् में चीज़ें बड़ी तेज़ी से बदलने लगतीं।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ३, पृ. १९८

## जब सब ठीक चल रहा हो तब कृतज्ञ होओ

लोगों को कृपा की क्रिया का भान तक नहीं होता जब तक कि कोई ख़तरा न आ जाये, यानी, जब तक किसी दुर्घटना का आरम्भ न हो जाये या जब दुर्घटना हो चुकी हो और वे उसमें से बच निकले हों, तब वे सचेतन हो उठते हैं, लेकिन उन्हें इस बात का भान नहीं होता। जैसे, उदाहरण के लिए, कोई यात्रा या कोई और चीज़ दुर्घटना के बिना हो जाती है तो यह कहीं अधिक महान् 'कृपा' है। यानी, सामञ्जस्य एक ऐसे ढंग से स्थापित हो जाता है कि कुछ भी नहीं हो सकता; लेकिन उनको यह बिलकुल स्वाभाविक प्रतीत होता है। जब लोग बीमार पड़ते हैं और

जल्दी ठीक हो जाते हैं तो वे कृतज्ञता से भरपूर होते हैं। लेकिन जब वे स्वस्थ होते हैं तो कृतज्ञ होने का कभी विचार भी नहीं करते; फिर भी यह ज़्यादा बड़ा चमत्कार है! सामूहिक दुर्घटनाओं में जो चीज़ मज़ेदार है, वह है ठीक अनुपात, सन्तुलन या असन्तुलन का प्रकार, व्यक्तियों के विभिन्न वायुमण्डलों से उत्पन्न यह संयोजन।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ५, पृ. ४४५

## 'कृपा' को सर्वोत्तम तरीक़े से स्वीकारना

*'कृपा' को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकारने का क्या तरीक़ा है?*

आहा! सबसे पहले तो तुम्हें उसकी आवश्यकता अनुभव करनी होगी।

यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात है। तुम्हारे अन्दर एक प्रकार की आन्तरिक नम्रता होनी चाहिये जो इस बात का भान कराती है कि तुम भागवत 'कृपा' के बिना कितने असहाय हो, कि सचमुच, उसके बिना तुम अपूर्ण और शक्तिहीन रहते हो। आरम्भ में, यही सबसे पहली चीज़ है।

यह एक ऐसा अनुभव है जिसे भली-भाँति किया जा सकता है। जब ऐसे लोग, जो कुछ भी नहीं जानते, अपने-आपको बहुत कठिन परिस्थितियों में पाते हैं, या किसी ऐसी समस्या में उलझ जाते हैं जिसे हल करना ही होगा, या जैसा कि मैंने अभी कहा, किसी ऐसे आवेग में आ जाते हैं जिसे जीतना ज़रूरी है, या अगर किसी वस्तु ने उन्हें व्याकुल कर दिया है... और उस समय वे अपने-आपको खोया-खोया-सा अनुभव करते हैं, उनकी समझ में नहीं आता कि वे क्या करें—उनका मन, उनका संकल्प, उनकी भावनाएँ, कोई भी सहायता नहीं करते—वे नहीं जानते कि क्या करें, तब यह होता है; उनके अन्दर से एक पुकार-सी उठती है, एक ऐसे के प्रति पुकार जो वह सब कर सकता है जिसे वे नहीं कर सकते। व्यक्ति उस चीज़ के प्रति अभीप्सा करता है जो वह काम करने में समर्थ है जिसे वह स्वयं नहीं कर सकता।

यह पहली शर्त है। और फिर, अगर तुम्हें इस बात का भान हो जाये कि केवल भागवत 'कृपा' ही यह कर सकती है, कि तुम अपने-आपको जिस परिस्थिति में पाते हो उसमें से केवल 'कृपा' ही तुम्हें उबार सकती

है, वही तुम्हें उसमें से निकलने के लिए उपाय बता सकती है और बल दे सकती है, तो स्वभावतः, तुम्हारे अन्दर एक तीव्र अभीप्सा जागेगी—एक ऐसी चेतना जो अपने-आपको उद्घाटन में बदल लेगी। अगर तुम आवाहन करो, अभीप्सा करो और उत्तर पाने की आशा करो, तो तुम बिलकुल स्वाभाविक रूप से अपने-आपको भागवत 'कृपा' की ओर खोलोगे।

और बाद में—तुम्हें इसकी ओर बहुत ध्यान देना चाहिये *(माताजी ओठों पर अँगुली रखती हैं)*—भागवत 'कृपा' तुम्हें उत्तर देगी, भागवत 'कृपा' तुम्हें कष्ट में से उबार लेगी, भागवत 'कृपा' तुम्हें समस्या का समाधान बतलायेगी या तुम्हें अपनी कठिनाई में से निकल आने में सहायता देगी। लेकिन जब तुम कष्ट से छुटकारा पा जाओ और कठिनाई में से निकल आओ, तो यह न भूलो कि भागवत 'कृपा' ने ही तुम्हें उबारा है, यह न सोचो कि यह तुमने स्वयं किया है। क्योंकि वास्तव में, यह महत्त्वपूर्ण बात है। कठिनाई ख़तम होते ही अधिकतर लोग कहते हैं : "आख़िर, मैंने अपने-आपको बड़ी अच्छी तरह कठिनाई में से निकाल लिया।"

तो यह बात है। इस तरह तुम दरवाज़ा बन्द कर देते हो, उस पर ताला जड़ कर चटकनी चढ़ा देते हो, और फिर तुम और कुछ नहीं पा सकते। इस आन्तरिक मूढ़ता को दूर करने, और तुम्हें यह अनुभव कराने के लिए कि तुम कुछ भी नहीं कर सकते, तुम्हें फिर से किसी तीव्र व्यथा की, किसी भयानक कठिनाई की ज़रूरत होती है। क्योंकि तभी तुम ज़रा-सा खुलते और लचीले बनते हो जब तुम्हें यह पता लग जाये कि तुम बलहीन हो। लेकिन जब तक तुम यह समझते हो कि जो कुछ तुम करते हो वह तुम्हारे अपने कौशल और अपनी क्षमता पर निर्भर है, तो सचमुच, तुम केवल एक दरवाज़ा नहीं, एक के बाद एक बहुत-से दरवाज़े बन्द कर देते हो, समझे, और उनमें चटकनी लगा देते हो। तुम अपने-आपको एक क़िले में बन्द कर लेते हो, और वहाँ कोई चीज़ प्रवेश नहीं कर सकती। यह सबसे बड़ी त्रुटि है : आदमी बहुत जल्दी भूल जाता है। बिलकुल स्वाभाविक रूप में, वह अपनी निजी क्षमता से सन्तुष्ट रहता है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ६, पृ. ३६४-६६

*भगवान् के प्रति निष्ठावान् रहो तो तुम निरन्तर शान्ति का रस पाओगे।*

## हमेशा प्रगति की चाह करो

*महाकाली के प्रहार की प्रकृति कैसी होती है?*

वह तुम्हें बहुत प्रसन्न बनाता है, वह तुम्हें हृदय में मधुर ऊष्मा प्रदान करता है। तुम पूरी तरह सन्तुष्ट अनुभव करते हो।

*हमें उसके लिए अभीप्सा करनी होती है या वह अपने-आप आता है?*

हाँ, तुम्हारी अभीप्सा में सच्चाई होनी चाहिये, तुम्हारे अन्दर सचमुच प्रगति की चाह होनी चाहिये। तुम्हें सचमुच कहना चाहिये: "जी हाँ, मैं प्रगति करना चाहता हूँ," सच्चाई के साथ कहना चाहिये...। "चाहे जो भी हो, मैं प्रगति करना चाहता हूँ।" तब वह आता है।

लेकिन जैसा कि मैंने कहा, वह प्रचुरता की शक्ति के साथ आता है जिसमें तीव्र आनन्द होता है। जब तुम एक निश्चय कर लो, अपने अन्दर किसी चीज़ को रोकने का निर्णय करो, जिस मूर्खता को एक बार कर चुके हो उसे न दोहराने का निश्चय कर लो, या कोई ऐसी चीज़ करना चाहो जो असम्भव लगती है या जिसे करना कठिन मालूम होता है, लेकिन जिसके बारे में तुम्हें पता है कि उसे करना ही चाहिये, जब तुमने निश्चय कर लिया और अपने संकल्प की पूरी सच्चाई उसमें लगा दी, तब अगर कोई ज़ोरदार प्रहार आये और तुम्हें वह करने के लिए बाधित करे जिसे करने का तुमने निश्चय किया है, तो वह प्रहार तो होता है पर ऐसा जिससे तुम्हें लगता है कि तुम महिमान्वित हो रहे हो, तुम बहुत ख़ुश होते हो, यह बहुत बढ़िया है, है न, तुम यहाँ *(हृदय की ओर इशारा)*, कोई बहुत अद्‌भुत चीज़ अनुभव करते हो।

दोनों अवस्थाओं में बहुत भेद है। एक वह अनर्थ है जो इसलिए होता है क्योंकि तुम शुद्ध रूप से बाहरी, यान्त्रिक, भौतिक चेतना और अज्ञान की स्थिति में रहते हो, जो तुमसे सभी सम्भव मूर्खताएँ करवाती है, जो स्वभावतः, अनिवार्य रूप से, अपने परिणाम लेकर आती हैं। इस स्थिति और एकदम उच्च स्थिति में बहुत भेद है, उस स्थिति में जिसमें तुम निश्चय कर लेते हो कि तुम अपने ऊपर प्रभुत्व प्राप्त करोगे, किसी भी क़ीमत पर

केवल 'सत्य'-चेतना में ही रहोगे, चाहे प्रगति का कुछ भी मूल्य क्यों न चुकाना पड़े, तुम प्रगति करोगे...। उस समय तुम्हारे साथ जो-जो होता है वह सार्थक होता है। तुम उनके अन्दर चमकते हुए सत्य को, मशाल की तरह तुम्हारे मार्ग को आलोकित करने वाले प्रकाश को, यहाँ पथ-प्रदर्शन करते हुए देखते हो... बहुत स्पष्ट देखते हो! अब यह तुम्हारी पीठ पर गिरने वाले पत्थर की तरह नहीं है जो तुम्हें कुचल डालता है। यह अभिभूत करने वाली एक दीप्ति है।

इसीलिए हमेशा कहा जाता है: केवल पहले क़दम में ही प्रयास की ज़रूरत होती है। पहले क़दम का अर्थ है: उस स्तर में से निकल आओ और इधर, इस पर चढ़ो। उसके बाद हर चीज़, हर चीज़ बदल जाती है।

लेकिन तुम्हें पूरी तरह उस स्तर से उठ आना चाहिये, तुम्हें वहीं नहीं बने रहना चाहिये। तुम्हें एक क़दम यहाँ और एक वहाँ न रखना चाहिये, इससे काम न चलेगा।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ६, पृ. ३६८-६९

## कृतज्ञ होओ उसके प्रति जो तुम्हारे दोष दिखलाये

सभी धर्मशास्त्र मनुष्यों को प्रगति कराने के लिए हैं, उन सबमें हमेशा यही कहा गया है कि जो तुम्हें तुम्हारे दोष दिखायें उनके प्रति तुम्हें बहुत कृतज्ञ होना चाहिये और उनके साथ सत्संग करने की कोशिश करनी चाहिये; लेकिन यहाँ जिस रूपक का उपयोग किया गया है वह ख़ास मज़ेदार है:

*अगर कोई तुम्हें दोष दिखाये तो मानों तुम्हें कोई ख़ज़ाना दिखा रहा है; यानी, हर बार जब हम अपने अन्दर दोष, अक्षमताएँ, समझ की कमियाँ, कमज़ोरियाँ, कपट और वे सब चीज़ें देखें जो हमें प्रगति करने से रोकती हैं तो मानों हम एक अद्‌भुत ख़ज़ाना पा जाते हैं।—'धम्मपद' से*

"आह, फिर से एक दोष," कहने और दुःखी होने की जगह उलटा हमें ख़ुश होना चाहिये, मानों कोई अद्‌भुत सम्पत्ति मिल गयी हो क्योंकि हमें एक ऐसी चीज़ का पता लगा है जो हमें प्रगति करने से रोकती थी। और एक बार हमने उसे पकड़ लिया तो बस उसे उखाड़ फेंकना चहिये! क्योंकि जो लोग योगाभ्यास करते हैं वे मानते हैं कि जिस क्षण मनुष्य को

पता लगता है कि अमुक बात नहीं होनी चाहिये उसी क्षण उसमें उसे हटाने की, दूर फेंकने और नष्ट करने की शक्ति आ जाती है।

दोष ढूँढ़ लेना एक उपलब्धि है। यह ऐसा है मानों ज्योति का स्रोत एक ऐसे स्थान में प्रवेश करता है जहाँ अन्धकार था और जिसे अभी-अभी भगाया गया है।

जब तुम योगाभ्यास करते हो तो इस कमज़ोरी, इस सुस्ती, इच्छा-शक्ति की इस कमी को अनुमति मत दो जिसके कारण ज्ञान के साथ-ही-साथ शक्ति नहीं आती। यह जानना कि एक चीज़ नहीं होनी चाहिये और फिर भी उसे होने देना एक ऐसी कमज़ोरी का संकेत है जिसे कोई गम्भीर साधना-प्रणाली अनुमति नहीं देती। इच्छा-शक्ति की यह ऐसी कमी है जो कपट तक जा पहुँचती है। तुम जानते हो कि एक चीज़ नहीं होनी चाहिये और जिस क्षण से तुम यह जानते हो उसी क्षण से तुम उसके स्वामी हो और वह न हो पायेगी, क्योंकि ज्ञान और शक्ति मूलतः एक ही चीज़ हैं—इसका मतलब यह कि तुम्हें अपनी सत्ता के किसी भाग में दुर्भावना की इस छाया को प्रवेश न पाने देना चाहिये, यह प्रगति की केन्द्रीय इच्छा-शक्ति के विरुद्ध है और ऐसी बुराई के सामने तुम्हें दुर्बल, साहसहीन और शक्तिहीन बना देती है जिसे तुम्हें नष्ट करना चाहिये।

अज्ञान में किया गया पाप पाप नहीं है; वह संसार जैसा है, उसकी सर्वसाधारण बुराई का एक अंग है, लेकिन जब तुम जानते हुए पाप करो तो बात गम्भीर हो जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि कहीं किसी भाग में फल के अन्दर कीड़े की तरह दुर्भावना का तत्त्व है जिसको किसी भी क़ीमत पर खोज निकालना और किसी-न-किसी तरह नष्ट कर देना चाहिये; क्योंकि इस तरह की कोई कमज़ोरी कभी-कभी ऐसी मुसीबतों की जड़ होती है, जो आगे चल कर असाध्य हो जाती हैं।

इसलिए सबसे पहली बात यह है कि जब कोई व्यक्ति या कोई प्रसंग तुम्हें ऐसे दोष के सम्मुख ला खड़ा करे जो तुम्हारे अन्दर है और जिसका तुम्हें पता नहीं, तो पूरी तरह प्रसन्न होओ। रोने-धोने की जगह तुम्हें ख़ुश होना चाहिये और उस ख़ुशी में वह शक्ति प्राप्त करो जो उस चीज़ से तुम्हारा पिण्ड छुड़ा सके जिसे नहीं होना चाहिये।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ३, पृ. २४१-४३

## कृतज्ञतापूर्वक की गयी प्रार्थना सर्वोत्तम होती है

प्रार्थना बहुत अधिक बाहरी चीज़ है, साधारणतः यह एक यथार्थ तथ्य के बारे में सूत्रबद्ध होती है क्योंकि सूत्र ही तो प्रार्थना को रूप देता है। तुम्हारे अन्दर अभीप्सा हो सकती है और तुम उसे प्रार्थना के रूप में लिख सकते हो, लेकिन अभीप्सा हर तरह से प्रार्थना के पार जाती है। यह बहुत अधिक क़रीब होती है और मानों अपने-आपको बहुत ज़्यादा भूल कर केवल उसी चीज़ के लिए जीती है जो व्यक्ति बनना या करना चाहता है। और व्यक्ति जो कुछ करना चाहता है अभीप्सा उस सारे का भगवान् के प्रति अर्पण है। तुम कुछ पाने के लिए प्रार्थना कर सकते हो, तुम, भगवान् ने तुम्हें जो कुछ दिया है उसके लिए कृतज्ञता प्रकाशित करने के लिए भी प्रार्थना कर सकते हो और यह ज़्यादा बड़ी प्रार्थना है। इसे कृतज्ञता-प्रकाशन की क्रिया कह सकते हैं। भगवान् ने तुम पर जो दया की है, उन्होंने तुम्हारे लिए जो कुछ किया है, तुम उनके अन्दर जो देखते हो, इन सबके लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए, उनकी स्तुति करने के लिए तुम प्रार्थना कर सकते हो। यह सब प्रार्थना का रूप ले सकता है। निश्चित रूप से यह सबसे ऊँची प्रार्थना है, क्योंकि यह ऐकान्तिक रूप से अपने अन्दर ही नहीं व्यस्त होती, यह अहंकारमयी प्रार्थना नहीं होती।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ५, पृ. १५६-५७

## परम प्रभु की इस अद्‌भुत कृपा को कभी मत भूलो

परिभाषा की दृष्टि से आश्रमवासी वह है जिसने अपने जीवन को 'भागवत उपलब्धि' के लिए समर्पित करने का निश्चय कर लिया है। लेकिन अपने निश्चय में सच्चा बने रहने के लिए उसे अपने समर्पण में निष्कपट, निष्ठावान्, विनम्र और कृतज्ञ रहना चाहिये, क्योंकि प्रगति के लिए ये गुण अनिवार्य हैं, और 'प्रकृति' की क्रम-विकासात्मक यात्रा में भाग ले सकने के लिए निरन्तर और तेज़ प्रगति अनिवार्यतः आवश्यक है।

इन गुणों के बिना, कभी-कभी व्यक्ति को प्रगति का आभास हो सकता है, लेकिन वह होता है आभास और दिखावा ही, और पहले ही अवसर पर सारी चीज़ ढह जाती है।

सच्चा और निष्कपट होने के लिए सत्ता के सभी भागों को प्रभु के

लिए अपनी अभीप्सा में एक होना होगा—यह नहीं कि एक भाग तो चाहे और दूसरे अभीप्सा को अस्वीकार कर दें, विद्रोह करें—प्रभु को प्रभु के लिए चाहना होगा, यश, नाम, पद, प्रतिष्ठा, शक्ति या दर्प की सन्तुष्टि के लिए नहीं।

व्यक्ति को अपने समर्पण में निष्ठावान् और दृढ़ रहना होगा—यह नहीं कि एक दिन तुम श्रद्धा से भरपूर रहो, लेकिन अगले ही दिन जब चीज़ें तुम्हारी इच्छानुसार न चलें तो तुम श्रद्धा से खिसक जाओ और हर तरह के शक और सन्देह को पोसने लगो। सन्देह कोई ऐसा खेल नहीं जिसे खुल खेलने दिया जाये। यह तो ऐसा विष है जो बूँद-बूँद करके आत्मा पर ज़ंग लगाता रहता है।

विनम्र होने का मतलब है कि व्यक्ति अपना सही मूल्यांकन करे और कभी यह न भूले कि उसकी चाहे जो उपलब्धियाँ रही हों, लेकिन उसके अनुपात में अभी मनुष्य का अस्तित्व प्रायः न के बराबर है जो उसे प्रभु की प्रत्याशाओं को चरितार्थ करने के लिए बनना चाहिये।

और सबसे बढ़ कर, निरपेक्ष रूप से उसे अपनी इस असमर्थता को अनुभव करना चाहिये कि वह प्रभु और उनके तरीक़ों का मूल्यांकन करने में असमर्थ है।

हमेशा कृतज्ञ रहो, परम प्रभु की इस अलौकिक कृपा को कभी मत भूलो जो प्रत्येक को—उसके अज्ञान, ग़लतफ़हमियों, उसके अहंकार, उसके विरोधों और विद्रोहों के बावजूद—उसके भागवत लक्ष्य की ओर छोटे-से-छोटे रास्ते से पहुँचाती है।

—हुता की पुस्तक *'सफ़ेद गुलाब'* से

*हठी आदमी कृतज्ञ नहीं हो सकता–क्योंकि जब वह मनचाही चीज़ पा लेता है तो वह उसका सारा श्रेय अपनी इच्छा-शक्ति को देता है और जब उसे ऐसी चीज़ मिलती है जिसे वह नहीं चाहता तो वह बुरी तरह कुढ़ता है और उसका दोष उस पर फेंकता है जिसे वह ज़िम्मेदार मानता है, चाहे वह भगवान् हो, मनुष्य हो या फिर 'प्रकृति'।*

'श्रीमातृवाणी', *खण्ड १४, पृ. १७१*

# कृतज्ञता का मार्ग

## शान्त और कृतज्ञतापूर्ण समर्पण में अन्तर

*पिछली बार पुस्तक में से यह पढ़ा गया था : "वे लोग (जिन्हें भगवान् में, अपने भगवान् में विश्वास है) पूर्णतः उन्हीं के हैं; उनके जीवन की समस्त घटनाएँ भागवत इच्छा की अभिव्यक्ति हैं और वे उन्हें शान्तिपूर्ण, आत्म-समर्पण के भाव में ही नहीं बल्कि कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते हैं, क्योंकि उन्हें पूरा विश्वास है कि जो कुछ उनके साथ घटेगा वह उनके भले के लिए होगा।"*

*शान्त और कृतज्ञतापूर्ण समर्पण में क्या अन्तर है?*

शान्त और कृतज्ञतापूर्ण समर्पण में?... जब तुम्हें कोई आदेश दिया जाता है, तुम उसे उदासीनता की भावना से पूरा कर सकते हो क्योंकि तुमने समर्पण करने का निश्चय कर लिया है; अतएव तुम वह काम प्रसन्नता या सुख के बिना शुष्क और ऊपरी भाव से कर देते हो, और कहते हो : "मुझसे यह काम करने के लिए कहा गया था और मैं कर रहा हूँ।" इसका मतलब यह हुआ कि तुम समझने की कोशिश नहीं करते और न ही उस वस्तु के साथ, जो तुम्हें करने के लिए दी गयी थी, स्वेच्छा से कोई सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न ही करते हो। यह उदासीनता का समर्पण है। तुम अपने भाग्य को स्वीकार कर लेते हो और यदि तुम कोई शिकायत नहीं करते तो केवल इसलिए कि तुमने शिकायत न करने का निश्चय कर लिया था, इस निश्चय के कारण ही, वरना तुम शिकायत करते।

दूसरा उदाहरण है ऐसे व्यक्ति का जो यह समझना चाहता है कि आदेश क्यों दिया गया, उसके आन्तरिक मूल्य को समझ कर उससे जो माँग की गयी है, उसे वह पूरी शक्ति के साथ अभिव्यक्त करना चाहता है। वह जानता है और इसमें आनन्द पाता है कि यह ऐसी चीज़ है जो भगवान् को नज़दीक लायेगी और उसे पूरा सन्तोष देगी। तब व्यक्ति प्रसन्न और सन्तुष्ट होता है और सहयोग देता है। इससे बहुत अन्तर पड़ जाता है।

*क्या शान्त समर्पण में व्यक्ति प्रसन्नता नहीं अनुभव करता?*

तब सामान्यतया व्यक्ति को अपने ऊपर गर्व होता है! वह घमण्ड में आकर अपने-आपसे कहता है कि वह कुछ अनोखे काम कर रहा है। वह प्रश्न नहीं करता, न समझने की कोशिश करता है : वह केवल आदेश का पालन करता है, वह आन पड़ी बात को स्वीकार करता है। वह स्वयं से यह भी नहीं पूछता कि यह ठीक है या नहीं : वह अपने-आपको अधिक बड़ा समझता है! घमण्ड से फूल उठता है। यहाँ ऐसे बहुत-से हैं।

*तब यह सच्चा समर्पण तो नहीं हुआ न?*

मेरे विचार में तो दूसरा समर्पण अधिक अच्छा है। कम-से-कम उसमें यह समझने का सन्तोष तो है कि अमुक काम क्यों हो रहा है; व्यक्ति प्रसन्नता से काम करता है और काम करने के तथ्य से ही उसे शक्ति के बढ़ने की अनुभूति होती है, जब कि पहले समर्पण में उसका सिर इतना नीचे, नीचे झुकता जाता है मानों बेचारा एक ऐसी निरंकुश सत्ता का शिकार बन गया हो जिसने उसे अपनी सर्वशक्तिमत्ता से कुचल कर रख दिया है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ६, पृ. ७२-७४

अपने अन्दर 'भागवत कृपा' को कार्य करने देने का सर्वोत्तम तरीक़ा यह है कि कभी उसका विरोध न करो, कभी उसके प्रति अकृतज्ञ न होओ और कभी उससे पीठ न फेरो—बल्कि 'प्रकाश', 'शान्ति', 'एकता' तथा 'आनन्द' के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए हमेशा उसका अनुसरण करो।

ऐसे बहुत कम हैं जिनसे 'कृपा' अपने-आपको खींच लेती है, लेकिन ऐसे बहुत-से हैं जो स्वयं को 'कृपा' से खींच लेते हैं।

SABCL खण्ड २३, पृ. ६१३ **श्रीअरविन्द**

*भगवान् के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने का चुपचाप प्रसन्न रहने से बढ़ कर कोई और तरीक़ा नहीं है।*

'श्रीमातृवाणी', *खण्ड १४, पृ. १७१*

# कृतज्ञता का आनन्द

### भागवत कृपा के प्रति पूर्ण विश्वास रखो

तुम्हारे आत्म-समर्पण में बहुत अधिक पवित्रता और बहुत अधिक तीव्रता होनी चाहिये, और भागवत 'कृपा' की परम प्रज्ञा में यह निरपेक्ष विश्वास होना चाहिये कि तुम्हारे लिए क्या अच्छा है, और ऐसी सब बातें 'वह' तुमसे अधिक अच्छी तरह जानती है। तब अगर व्यक्ति अपनी अभीप्सा को 'उसे' समर्पित करे, सचमुच पर्याप्त तीव्रता के साथ दे, तो परिणाम अद्‌भुत होते हैं। लेकिन व्यक्ति को उन्हें देखना आना चाहिये, क्योंकि जब चीज़ें चरितार्थ हो जाती हैं तो अधिकतर लोगों को वे बिलकुल स्वाभाविक लगने लगती हैं, वे यह भी नहीं देखते कि यह कैसे और क्यों हुआ, और वे स्वयं से कहते हैं : "हाँ, स्वभावतः ऐसा होना ही था।" तो वे उस आनन्द को खो बैठते हैं... कृतज्ञता के उस आनन्द को, क्योंकि अन्ततः भागवत 'कृपा' के प्रति अगर व्यक्ति कृतज्ञता और धन्यवाद-प्रकाशन से भरपूर हो, तो इससे सोने पर सुहागा लग जाता है, और हर क़दम पर व्यक्ति देखता है कि चीज़ें अच्छी-से-अच्छी और ठीक जैसी होनी चाहियें वैसी ही हो रही हैं।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ७, पृ. २६६-६७

### उत्साह की क्षमता—सबसे अधिक निश्चित कड़ी

दो मुख्य चीज़ें हैं। उत्साह के लिए यह क्षमता जो मनुष्य को उसकी कम या अधिक जड़ता में से बाहर निकाल लाती है ताकि वह अपने-आपको अधिक या कम पूर्णता के साथ उस चीज़ में झोंक सके जो उसे जगाती है। उदाहरण के लिए, कलाकार अपनी कला के लिए, वैज्ञानिक अपने विज्ञान के लिए। और सामान्यतः, हर ऐसे व्यक्ति में जो निर्माण करता या सृजन करता है, एक-न-एक उद्‌घाटन होता है, किसी विशेष क्षमता का, किसी विशेष सम्भावना का उद्‌घाटन जो उसमें उत्साह पैदा करता है। जब यह सक्रिय हो तो सत्ता के अन्दर कोई चीज़ जाग जाती है, और की जाने वाली चीज़ में लगभग सारी सत्ता का सहयोग मिलता है।

यह बात है। और फिर कुछ ऐसे लोग होते हैं जिनमें कृतज्ञता की सहज क्षमता होती है, जिनमें प्रत्युत्तर देने की आतुरता होती है, जो किसी

*हमेशा हमारे हृदय में कृतज्ञता की पवित्र, ऊष्मापूर्ण, मधुर तथा दीप्त लौ सुलगती रहे ताकि हमारा सारा अहंकार और सारी अन्धता उसमें विलीन हो जायें; वह हो 'परम कृपा' के प्रति कृतज्ञता की लौ जो साधक को उसके लक्ष्य तक पहुँचाती है—और वह जितना अधिक कृतज्ञ होगा, कृपा की इस क्रिया को पहचानेगा और उसके लिए स्वयं को धन्य अनुभव करेगा, उतना अधिक पथ छोटा हो जायेगा।*

*हुता की पुस्तक 'सफ़ेद गुलाब' से* श्रीमाँ

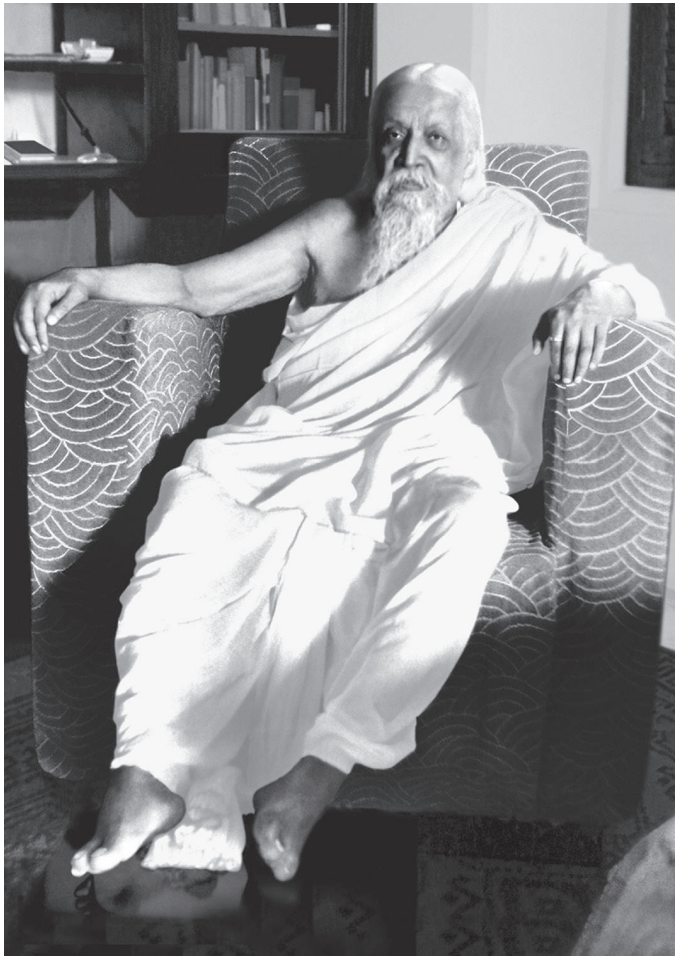

**कृतज्ञता :**

*भगवान् से मिलने वाली कृपा को प्रेमपूर्ण मान्यता देना।*

*भगवान् ने तुम्हारे लिए जो कुछ किया है और कर रहे हैं उसके लिए विनम्र मान्यता।*

*भगवान् के प्रति सहज आभार का भाव, भगवान् तुम्हारे लिए जो कुछ कर रहे हैं उसके कम अयोग्य बनने के लिए यह भरसक प्रयत्न करवाता है।*

'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. १७०

ऐसी चीज़ के प्रति, जिसे वे समस्त जीवन के पीछे, छोटे-से-छोटे तत्त्व के पीछे, जीवन की छोटी-से-छोटी घटना के पीछे छिपी अद्‌भुत वस्तु के रूप में अनुभव करते हैं और उसे ऊष्मा, निष्ठा और आनन्द के साथ प्रत्युत्तर देते हैं। वे सभी चीज़ों के पीछे परम सौन्दर्य या अनन्त 'कृपा' का अनुभव करते हैं।

मैंने ऐसे लोग देखे हैं जिन्हें, हम कह सकते हैं, किसी चीज़ का कोई ज्ञान न था, जो शायद ही कुछ पढ़े-लिखे थे, जिनके मानस बिलकुल सामान्य प्रकार के थे, और जिनमें कृतज्ञता की, ऊष्मा की यह क्षमता थी जो अपने-आपको दे देती है, समझती है और कृतज्ञ होती है।

हाँ तो, उनमें उनकी योग्यता के अनुसार, लगभग निरन्तर चैत्य सम्पर्क होता था—बहुत अधिक नहीं, कुछ-कुछ सचेतन सम्पर्क, यानी, वे अनुभव करते थे कि उन्हें ले जाया जा रहा है, सहायता दी जा रही है, उन्हें उनसे ऊपर उठाया जा रहा है। ये दो चीज़ें लोगों को सबसे अधिक तैयार करती हैं। वे इन दोनों में से किसी एक या दूसरी को लेकर पैदा होते हैं; और अगर वे ज़रा कष्ट उठायें, तो यह चीज़ धीरे-धीरे विकसित होती है, बढ़ती है।

हम कहते हैं कि उत्साह की क्षमता एक ऐसी चीज़ है जो तुम्हें तुम्हारे दरिद्र, क्षुद्र, नीच अहंकार से ऊपर उठा देती है; और उदारतापूर्ण कृतज्ञता, कृतज्ञता की उदारता जो अपने-आपको धन्यवाद-ज्ञापन में छोटे-से अहंकार में से बाहर निकाल देती है। अपनी चैत्य सत्ता में भगवान् के साथ सम्पर्क पाने के लिए ये दो सबसे अधिक शक्तिशाली उत्तोलक हैं। यह चैत्य सत्ता के साथ जोड़ने वाली कड़ी का काम देती है—सबसे अधिक निश्चित कड़ी का।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ७, पृ. ४६०-६१

## कृतज्ञता के बिना भक्ति अपूर्ण होती है

एक व्यक्ति में भक्ति है और वह अपना अहं बनाये रखता है। और तब उसका अहं भक्ति के वश उससे सभी प्रकार के कार्य कराता है, ऐसी चीज़ें कराता है जो भयंकर रूप से अहंकारपूर्ण हैं। कहने का तात्पर्य, वह एकमात्र अपने विषय में ही सोचता है, न तो दूसरों के विषय में, न जगत् के विषय में, न कर्म के विषय में, न इस विषय में सोचता है कि क्या किया जाना चाहिये—वह बस अपनी भक्ति की बात सोचता है। और

वह बड़ा भारी अहंकारी बन जाता है। और इसलिए, जब उसे पता लगता है कि भगवान्, किसी कारणवश, उसकी भक्ति का उतने ही उत्साहपूर्वक उत्तर नहीं देते जितने उत्साह की वह उनसे आशा करता था तो वह निराश हो जाता है और उन्हीं तीन कठिनाइयों में फिर जा गिरता है जिनकी मैं अभी चर्चा कर रही थी : या तो भगवान् निर्दय हैं—हमने इसे पढ़ा है, ऐसी अनेक कहानियाँ हैं, उन उत्साहपूर्ण भक्तों की जो भगवान् को गालियाँ देते हैं क्योंकि वे अब उतने उदार और उनके समीप नहीं होते जितने पहले थे, वे पीछे हट गये हैं, "क्यों तूने मुझे त्याग दिया है? क्यों छोड़ दिया है, ऐ राक्षस!..." वे ऐसा कहने का साहस नहीं करते, पर ऐसा सोचते हैं, या फिर वे कहते हैं : "ओह! मैंने अवश्य ही कोई इतनी भारी भूल कर दी होगी जिसके कारण मुझे दूर फेंक दिया गया है", और वे निराशा के गर्त में जा गिरते हैं।

परन्तु एक दूसरी क्रिया है जो भक्ति के साथ निरन्तर बनी रहनी चाहिये...। इस प्रकार की कृतज्ञता का भाव कि भगवान् का अस्तित्व है; चमत्कारपूर्ण कृतज्ञता की यह भावना जो वास्तव में इस तथ्य के कारण ही तुम्हें महान् हर्ष से भर देती है कि भगवान् हैं, विश्व में कोई वस्तु है जो भगवान् है, ठीक वह भयंकरता ही नहीं है जिसे हम देखते हैं, भगवान् हैं, भगवान् विद्यमान हैं। और जब-जब अत्यन्त मामूली चीज़ भी तुम्हें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में, दिव्य सत्ता के इस उच्च 'सत्य' के सम्पर्क में ला देती है, तुम्हारा हृदय इतने तीव्र, इतने अलौकिक हर्ष से, एक ऐसी कृतज्ञता से भर जाता है जिसमें मानों अन्य सब चीज़ों की अपेक्षा सबसे अधिक आनन्दपूर्ण रस होता है।

ऐसी कोई चीज़ नहीं जो तुम्हें कृतज्ञता से प्राप्त हर्ष के समान हर्ष प्रदान करे। हम एक पक्षी को गाते हुए सुनते हैं, एक सुन्दर-सा पुष्प देखते हैं, एक नन्हें से बच्चे को निहारते हैं, उदारता के एक कार्य की ओर दृष्टिपात करते हैं, एक आकर्षक वाक्य पढ़ते हैं, अस्तोन्मुख रवि को देखते हैं, इसका महत्त्व नहीं कि वह क्या चीज़ है, एकाएक यह चीज़ तुम्हें अभिभूत कर देती है, इस प्रकार का भावातिरेक—निस्सन्देह, इतना गभीर, इतना तीव्र—कि संसार भगवान् को अभिव्यक्त कर रहा है, कि जगत् के पीछे कोई वस्तु है जो भगवान् है।

अतएव, मैं समझती हूँ कि कृतज्ञता के बिना भक्ति एकदम अपूर्ण होती है, भक्ति के साथ-साथ कृतज्ञता अवश्य होनी चाहिये।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ८, पृ. ४८-४९

## कृतज्ञता ही परिवर्तन का द्वार खोलती है

*माँ, अपनी चेतना को कैसे परिवर्तित किया जाये?*

... कभी-कभी, जब हम कोई उदारतापूर्ण कार्य देखते हैं, कोई असामान्य बात सुनते हैं, जब हम वीरता, उदारता या आत्मा की भव्यता का निरीक्षण करते हैं, किसी ऐसे व्यक्ति से मिलते हैं जो एक विशेष योग्यता प्रदर्शित करता है या किसी असाधारण तथा सुन्दर तरीक़े से काम करता है तो उस समय एक प्रकार का उत्साह या आदर-भाव या कृतज्ञता होती है जो एकाएक सत्ता में जग जाती है और एक स्थिति की ओर, चेतना की एक नयी स्थिति, एक ज्योति, एक प्रकार की उष्णता, एक प्रकार के हर्ष की ओर दरवाज़ा खोल देती है जिन्हें हम पहले नहीं जानते थे। यह भी मार्ग-दर्शक सूत्र को पकड़ने का एक तरीक़ा है। इसके हज़ारों तरीक़े हैं, हमें बस जाग्रत् रहना और निगरानी रखनी चाहिये।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ८, पृ. ४८१-८२

## कृतज्ञता की लौ जलाये रखो

अँधेरे काल बार-बार और सभी के लिए आया करते हैं। साधारणतः, यह जानते हुए कि ये आध्यात्मिक रातें हैं जो बारी-बारी से दिन के सम्पूर्ण प्रकाश में बदला करती हैं, चिन्ता किये बिना चुपचाप रहना पर्याप्त है।

लेकिन शान्त रह सकने के लिए तुम्हें अपने हृदय में भगवान् के प्रति 'वे' जो कुछ सहायता दे रहे हैं उसके लिए कृतज्ञ होना चाहिये। अगर कृतज्ञता पर परदा पड़ जाये, तो अँधेरे काल अधिक लम्बे हो जाते हैं। एक तेज़ और कारगर उपचार भी है: हमेशा अपने हृदय में पवित्रता की अग्नि जलाये रखना, प्रगति के लिए अभीप्सा, तीव्रता, आत्मोत्सर्ग की उत्कण्ठा बनाये रखना। उन सभी के हृदय में यह लौ प्रज्वलित होती है जो सच्चे और निष्कपट हैं; उसे कृतघ्नता की राख के नीचे दब न जाने दो।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १४, पृ. २७२-७३

अहंकार उसके बारे में सोचता है जो उसके पास नहीं है और जिसे वह चाहता है। वह निरन्तर इसी काम में व्यस्त रहता है।

अन्तरात्मा जानती है कि उसे क्या दिया गया है और वह अनन्त कृतज्ञता में निवास करती है।

*

सारा संसार भले नष्ट हो जाये लेकिन मेरी सनकें सन्तुष्ट हों!

अहंकारी मन की यही मनोवृत्ति होती है, वह अपने सिद्धान्तों को सबके ऊपर लादना चाहता है।

दिव्य दृष्टि में सिद्धान्त और कामनाएँ एक-सी चीज़ें हैं : सिद्धान्त मन की सनकें हैं उसी तरह जैसे कामनाएँ प्राण की सनकें हैं।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १४, पृ. २८४, ३७५

## हमारी कृतज्ञता भगवान् की ओर जानी चाहिये

*मधुर माँ, मनुष्य और भगवान् के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने का सबसे अच्छा तरीक़ा क्या है?*

तुम मनुष्य और भगवान् को एक साथ क्यों रखते हो?

यह सच है कि मनुष्य तत्त्वतः दिव्य है, लेकिन वर्तमान अवस्था में, कुछ विरल अपवादों को छोड़ कर, मनुष्य उस भगवान् के बारे में एकदम अचेतन होता है, जिसे वह अपने अन्दर लिये रहता है; और यही अचेतना जड़-जगत् के मिथ्यात्व का निर्माण करती है।

मैं तुम्हें पहले ही लिख चुकी हूँ कि हमारी कृतज्ञता भगवान् के प्रति जानी चाहिये, रही बात मनुष्यों की, तो वहाँ जिसकी ज़रूरत है वह है सद्भावना, समझ और परस्पर सहायता की वृत्ति।

सुखी और शान्त होने का सबसे अच्छा उपाय है, भगवान् के प्रति गहराई में, तीव्रता के साथ सतत कृतज्ञता का अनुभव करना।

और भगवान् के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का सबसे अच्छा तरीक़ा है, उनके साथ तदात्म हो जाना।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १६, पृ. ३५५

पाने वाला चाहे जो हो, उपहार चाहे कुछ भी हो, लेकिन जो उपहार को ग्रहण करता और स्वीकार करता है वह सचमुच सभी चीज़ों में बसने वाला 'परम' और 'शाश्वत' ही होता है, भले ही तात्कालिक पात्र उसे अस्वीकार कर दे, उसकी अवहेलना कर दे। क्योंकि वे 'परम' जो विश्व से अतीत हैं, यहाँ भी, छिपे रूप में ही सही, हमारे अन्दर, जगत् के अन्दर और इसकी घटनाओं में उपस्थित हैं। वे एकमेव ही हमारे सभी कार्यों और प्रयासों, पापों और स्खलनों तथा दुःखों और संघर्षों का अन्तिम परिणाम निर्धारित करते हैं, चाहे हम इसके बारे में सचेतन हों या अचेतन, चाहे हम इसे जानते और प्रत्यक्ष अनुभव करते हों या न जानते हों और न ही अनुभव करते हों। सभी उनके अगणित रूपों में उन्हीं की ओर मुड़े हुए हैं और उन रूपों के द्वारा उसी एक सर्वव्यापक सत्ता के प्रति समर्पित होते हैं। हम चाहे जिस भी रूप में और चाहे जिस भी भावना के साथ उन एकमेव के पास पहुँचें, उसी रूप में और उसी भावना के साथ वे हमारे यज्ञ को स्वीकार करते हैं।

*ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।*

CWSA खण्ड २३, पृ. ११०

हमारे हर पल और हमारी सत्ता की हर गतिविधि को सतत रूप से और एकनिष्ठ भक्तिपूर्वक स्वयं को शाश्वत के प्रति समर्पित करने का निश्चय करना होगा। हमारी सभी क्रियाएँ—न केवल महान् से महान्, सबसे अधिक असामान्य और कुलीन, बल्कि छोटी से छोटी, सामान्य से सामान्य और तुच्छ-सी दीखने वाली क्रियाएँ भी समर्पित कर्म के रूप में की जानी चाहियें। हमारी व्यक्तिभावापन्न प्रकृति को आन्तरिक और बाह्य क्रिया की उस एकमेव चेतना में निवास करना चाहिये जो किसी ऐसी 'परम वस्तु' के प्रति समर्पित हो जो हमसे परे और हमारे अहं से अधिक महान् हो। इसका कोई महत्त्व नहीं कि उपहार क्या है या हमारे द्वारा उसे किसे दिया जा रहा है, बल्कि हमारे देने की क्रिया में यह चेतना होनी चाहिये कि हम उपहार उस परम भागवत सत्ता को निवेदित कर रहे हैं जो सभी सत्ताओं में विद्यमान है।

CWSA खण्ड २३, पृ. १११ **श्रीअरविन्द**

## कृतज्ञता व्यक्त करने का सर्वोत्तम तरीक़ा

अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए जो अच्छी-से-अच्छी चीज़ हम कर सकते हैं वह है, अपने अन्दर के समस्त अहंकार पर विजय पाना और इस रूपान्तर के लिए सतत प्रयास करना। मानव अहं इस कारण अपदस्थ होने से इन्कार करता है कि और लोग रूपान्तरित नहीं हुए हैं। लेकिन वही दुर्भावना का गढ़ है, क्योंकि हर एक का कर्तव्य है कि और लोग क्या करते हैं उसकी परवाह किये बिना अपने-आपको रूपान्तरित करना।

अगर लोग जानें कि यह रूपान्तर, अहंकार का लोप ही सतत शान्ति और आनन्द का एकमात्र मार्ग है तो वे आवश्यक प्रयास करने के लिए तैयार हो जायेंगे। अतः, उनके अन्दर यह विश्वास जगाना चाहिये।

हर एक से बार-बार कहना चाहिये : अपने अहंकार को लुप्त कर दो तो तुम्हारे अन्दर शान्ति का राज्य होगा।

भगवान् की सहायता हमेशा सच्ची अभीप्सा को उत्तर देती है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १६, पृ. ४७९

## अपने-आपको पूरी तरह प्रभु को दे दो

पहली चीज़ जो भौतिक चेतना को समझनी चाहिये वह यह है कि जीवन में हमें जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है वे सब इस तथ्य से आती हैं कि हमें जिस सहायता की आवश्यकता है उसके लिए हम ऐकान्तिक रूप से भगवान् पर निर्भर नहीं रहते।

केवल भगवान् ही हमें वैश्व प्रकृति की यान्त्रिकता से मुक्त कर सकते हैं। और यह मुक्ति नयी जाति के जन्म और विकास के लिए अनिवार्य है।

पूर्ण विश्वास और कृतज्ञता के साथ अपने-आपको पूरी तरह भगवान् के अर्पण करने से ही कठिनाइयों पर विजय मिलेगी।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १६, पृ. ४८४

## प्रयास के प्रेम के लिए प्रयास करो

*मधुर माँ, जब हमारे अन्दर अधिक अच्छा करने का प्रयास चलता है, पर हमें कोई प्रगति नहीं दीखती, तो हम बहुत हताश हो जाते हैं। क्या करना सबसे अच्छा होगा?*

हताश न होना! निराशा कहीं नहीं ले जाती।

शुरू में, सबसे पहली बात तो तुम्हें अपने-आपसे यह कहनी चाहिये कि तुम यह जानने में प्रायः बिलकुल अक्षम हो कि तुम प्रगति कर रहे हो या नहीं, क्योंकि, बहुधा, जो हमें गतिहीनता की अवस्था लगती है, वह आगे की ओर छलाँग लगाने की लम्बी—कभी-कभी लम्बी पर किसी हालत में अन्तहीन नहीं—तैयारी होती है। कभी-कभी हमें लगता है कि हफ़्ते और महीने बीतते जाते हैं और तब सहसा वह चीज़ सामने आ जाती है जिसकी ओर तैयारी हो रही थी, और हम देखते हैं कि काफ़ी कुछ बदल गया है, और एक साथ **कई स्थलों पर**।

जैसा कि योग में हर बात के लिए होता है, यह ज़रूरी है कि प्रगति के लिए प्रयास इसलिए किया जाये क्योंकि प्रगति के प्रयास से हमें प्रेम है। फल से स्वतन्त्र, प्रयास का आनन्द, प्रगति के लिए अभीप्सा ही अपने-आपमें पर्याप्त होनी चाहिये। योग में व्यक्ति जो कुछ करता है वह करने के आनन्द के लिए करना चाहिये, अपने वाञ्छित फल को ध्यान में रख कर नहीं...। सचमुच, जीवन में, सदा, हर वस्तु में, फल पर हमारा अधिकार नहीं होता। और यदि हम सच्ची मनोवृत्ति अपनाना चाहते हैं तो हमें सहज तरीक़े से काम करना, अनुभव करना, विचार करना और प्रयास करना चाहिये, क्योंकि **वही** है जिसे करना चाहिये, किसी वाञ्छित परिणाम को दृष्टि में रख कर नहीं।

जैसे ही हम फल के बारे में सोचते हैं हम सौदेबाज़ी पर उतर आते हैं और यह प्रयास की सारी सच्चाई को छीन लेती है। तुम प्रगति के लिए प्रयत्न करते हो क्योंकि तुम अपने अन्दर इसकी आवश्यकता महसूस करते हो, प्रयत्न और प्रगति करने के लिए **अनिवार्य** आवश्यकता। यह प्रयत्न वह भेंट है जो तुम अपने अन्दर स्थित 'दिव्य चेतना' को, विश्व की 'दिव्य चेतना' को अर्पित कर रहे हो, यह अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने का, अपने-आपको दे देने का तुम्हारा तरीक़ा है; और फलस्वरूप यह कोई प्रगति लाता है या नहीं—इसका कुछ भी महत्त्व नहीं है। तुम तभी प्रगति करोगे जब यह निर्णय हो जायेगा कि प्रगति का समय आ गया है, इसलिए नहीं कि तुम चाहते हो।

यदि तुम प्रगति की इच्छा करते हो, उदाहरणार्थ, यदि तुम अपने-आपको

वश में करने का प्रयास करना चाहते हो, कुछ त्रुटियों, दुर्बलताओं, अपूर्णताओं पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करते हो, और लगभग तुरत ही अपने प्रयत्न का फल पाने की आशा सँजोये होते हो तो तुम्हारा प्रयत्न सारी सच्चाई खो देता है। वह सौदेबाज़ी हो जाती है। तुम कहते हो : "देखो, मैं प्रयत्न करने जा रहा हूँ क्योंकि अपने प्रयत्न के बदले में मैं अमुक चीज़ चाहता हूँ।" तब तुम सहज-स्वाभाविक नहीं रह जाते।

अतः दो चीज़ें याद रखनी चाहियें। पहले, परिणाम **क्या** होना चाहिये यह निर्णय करने की क्षमता हमारे हाथ में नहीं है। यदि हम भगवान् पर भरोसा रखते हैं, यदि हम कहते हैं... यदि हम कहते हैं, "ठीक है, मैं सब कुछ दे दूँगा, सब कुछ, मैं जो कुछ दे सकता हूँ, प्रयत्न, एकाग्रता सब कुछ, और 'वे' ही विचार करेंगे कि बदले में क्या दिया जाये, या बदले में कुछ दिया भी जाये या नहीं, और मैं, मैं स्वयं नहीं जानता कि परिणाम क्या होना चाहिये।" अपने अन्दर कुछ भी रूपान्तरित करने से पहले क्या हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि इस रूपान्तर को कौन-सी दिशा, राह और रूप लेना चाहिये?—बिलकुल नहीं। अतः, यह तो हमारी कल्पना-मात्र है और साधारणतया हम वाञ्छित परिणाम की संकीर्ण सीमा बाँध देते हैं, उसे एकदम ही तुच्छ, क्षुद्र, छिछला, सापेक्ष बना देते हैं। हम नहीं जानते कि ठीक-ठीक परिणाम क्या हो सकता है, क्या होना चाहिये। हमें बाद में पता चलता है। जब वह आता है, जब परिवर्तन हो चुकता है, तब यदि हम पीछे मुड़ कर देखें तो कहेंगे : "आह! तो यह है, इसी की ओर तो मैं बढ़ रहा था!"—पर यह तो बाद में ही पता चलता है। इससे पहले तो व्यक्ति सिर्फ धुँधली कल्पनाएँ करता है जो सच्चे रूपान्तर, सच्ची प्रगति की तुलना में बिलकुल ऊपरी और बचकानी होती हैं।

अतः हम कहते हैं, पहली बात है : हमारे अन्दर अभीप्सा है, पर सचमुच हम नहीं जानते कि कौन-सा सच्चा परिणाम है जो हमें मिलना चाहिये। यह तो केवल भगवान् ही जान सकते हैं।

और दूसरी बात, यदि हम भगवान् से कहें : "मैं आपको अपना प्रयत्न अर्पण करता हूँ, लेकिन देखिये, बदले में मेरी प्रगति होनी चाहिये नहीं तो मैं आपको कुछ भी नहीं दूँगा!" तब यह सौदेबाज़ी हुई।

सहज कार्य, जो इसलिए किया जाता है कि तुम अन्यथा कर ही नहीं

सकते, और सद्भावना की भेंट के रूप में किया गया कार्य ही वह एकमात्र कार्य है जो सचमुच मूल्यवान् है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ९, पृ. ३४६-४८

# कृतज्ञता की कुछ सूक्तियाँ

सभी अग्नि-परीक्षाओं के लिए कृतज्ञ होओ, वे प्रभु तक ले जाने वाले लघुतम मार्ग हैं।

*

अपने हृदय को ख़ुश रखने के लिए उसे हमेशा कृतज्ञता से लबालब रखो। कृतज्ञता प्रभु की ओर ले जाने वाला निश्चिततम मार्ग है।

*

मैं जो कुछ देती हूँ उसे ख़ुशी से स्वीकारना कभी स्वार्थपूर्ण नहीं होता। प्रसन्नतापूर्ण कृतज्ञता से बढ़ कर अहंकार का कोई और उपचार नहीं है।

*

भगवान् तुम्हें जो कुछ देते हैं उसे हमेशा ख़ुशी से स्वीकार करो।

*

कृतज्ञता को बनाए रखना बहुत कठिन है। कुछ समय के लिए वह बड़े वेग से आती है और फिर लौट जाती है। भगवान् तुम्हारी कृतघ्नता के बावजूद सब कुछ सहते चले जाते हैं क्योंकि 'वे' हर चीज़ के 'क्यों, कैसे और किस कारण' से पूरी तरह परिचित हैं। 'वे' जानते हैं कि तुम अमुक चीज़ क्यों कर रहे हो। 'वे' पूरी क्रिया जानते हैं और इसीलिए उसे सह सकते हैं।

*

किसी सत्ता का आभिजात्य उसकी कृतज्ञता की क्षमता से नापा जाता है।

*

कृतज्ञता : तुम ही समस्त बन्द द्वारों को खोल देती हो और रक्षा करने वाली भागवत कृपा को गहरे पैठने देती हो।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १४ से

# कृतज्ञता के साथ श्रीअरविन्द का स्मरण करना

### श्रीअरविन्द की स्मृति में ध्यान करना

आज शाम को प्रश्नों का उत्तर देने के स्थान पर मैं चाहती हूँ कि हम श्रीअरविन्द की स्मृति में ध्यान करें, इस पर ध्यान करें कि उस स्मृति को अपने अन्दर जीवन्त कैसे बनाये रखा जाये और उस कृतज्ञता को भी, जो हमारे अन्दर उस सबके लिए होनी चाहिये जो उन्होंने किया और अब भी अपनी सदा ज्योतिर्मयी, सजीव और सक्रिय चेतना में इस महान् दिव्य चरितार्थता के लिए कर रहे हैं। वे पृथ्वी पर इस दिव्य चरितार्थता की केवल घोषणा करने ही नहीं, बल्कि उसे संसिद्ध करने भी आये थे और वे इसे संसिद्ध करने में लगे हुए हैं।

कल उनका जन्मदिन है, यह विश्व के इतिहास में एक शाश्वत जन्म है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड ९, पृ. १९१

### श्रीअरविन्द की शिक्षा को समझना और अभ्यास में लाना

श्रीअरविन्द धरती पर जो प्रकाश, ज्ञान और शक्ति इतनी उदारता के साथ लेकर आये हैं उस सबके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करने के लिए सबसे अच्छा उपाय है कि हम उनकी शिक्षा को अच्छी तरह समझने और उसे कार्यान्वित करने की कोशिश करें।

उनकी शिक्षा हमें प्रकाश दे और हमारा मार्ग-दर्शन करे, आज हम जिस चीज़ को नहीं कर पाते, उसे निश्चय ही कल कर लेंगे।

आओ, हम पूरी सच्चाई और निष्कपटता के साथ उचित मनोभाव अपनायें, तब यह सचमुच **शुभ वर्ष** होगा।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १३, पृ. १६-१७

श्रीअरविन्द के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए उनकी शिक्षा के जीवित-जाग्रत् उदाहरण बनने से बढ़ कर और कुछ नहीं है।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १३, पृ. २९

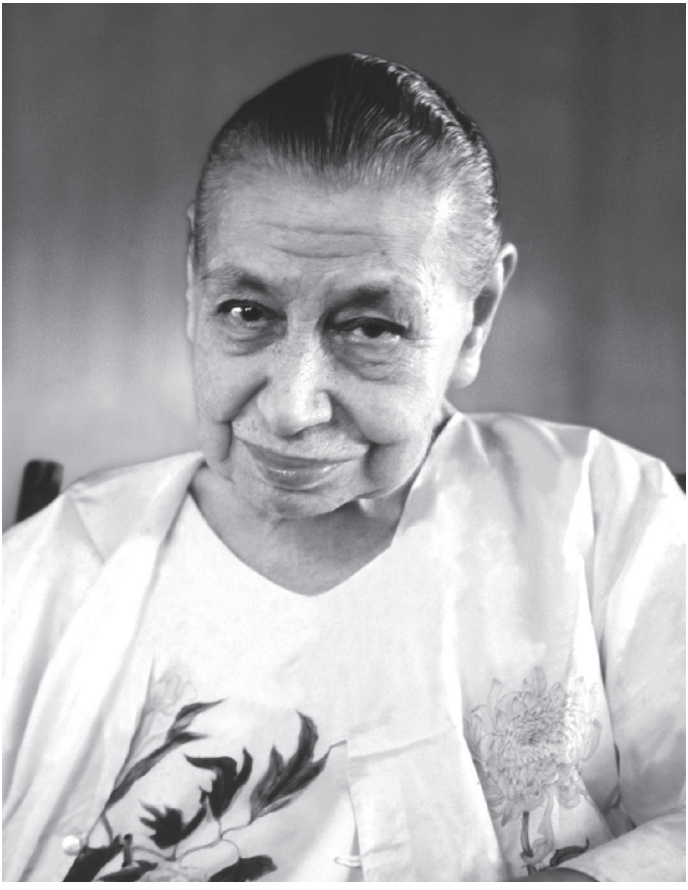

*जब मनुष्य थोड़ा और बुद्धिमान् हो जायेगा तो वह किसी भी विषय में शिकायत नहीं करेगा और भगवान् द्वारा दी गयी वस्तुओं को उनकी सर्व-अनुग्रहपूर्ण कृपा के रूप में स्वीकार करेगा।*

*हम उनके प्रति जितने अधिक समर्पित होंगे उतना अधिक उन्हें समझ सकेंगे। हम उनके प्रति जितने अधिक कृतज्ञ होंगे उतने अधिक प्रसन्न रहेंगे।*

'श्रीमातृवाणी', *खण्ड १०, पृ. ४०१*

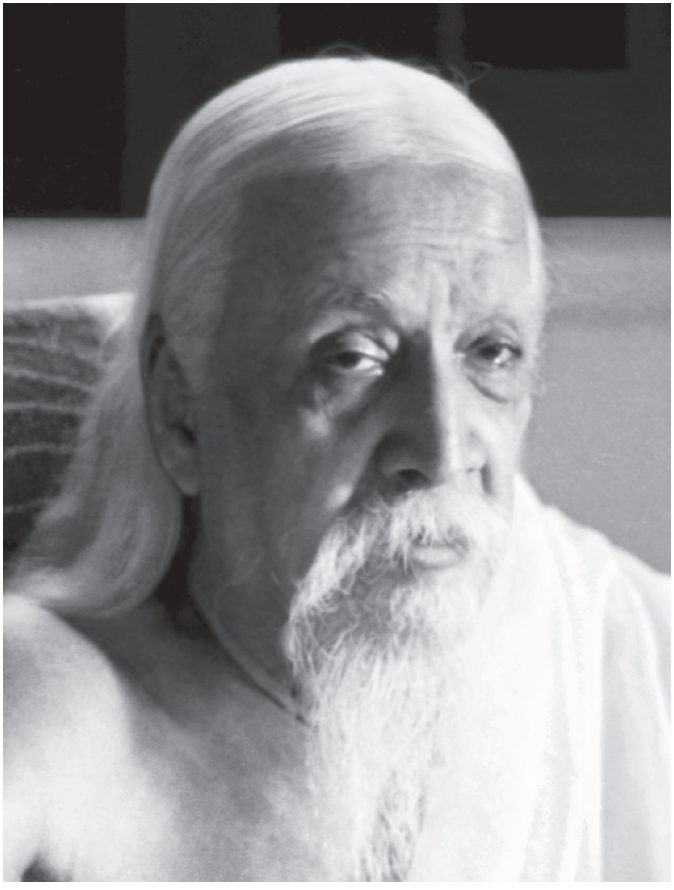

*तुम्हारे प्रति जो हमारे प्रभु के भौतिक आवरण रहे हो, तुम्हारे प्रति हम असीम कृतज्ञता प्रकट करते हैं। तुमने हमारे लिए इतना कुछ किया, हमारे लिए कर्म किये, संघर्ष किये, कष्ट झेले, आशा की, इतना सहन किया, तुमने हम सबके लिए संकल्प किये, सबके लिए प्रयत्न किये, तैयारी की, हमारे लिए सब कुछ प्राप्त किया, तुम्हारे सम्मुख हम नतमस्तक हैं और यह प्रार्थना करते हैं कि हम एक क्षण के लिए भी कभी तुम्हारे ऋण को न भूलें।*

'श्रीमातृवाणी', *खण्ड १३, पृ. ७*

## पथ के लिए अनिवार्य गुण

अपनी परिभाषा के अनुसार आश्रमवासी वह है जिसने अपना जीवन भगवान् की सिद्धि और सेवा के लिए अर्पित करने का संकल्प कर लिया हो।

इसके लिए चार गुण अनिवार्य हैं, उनके बिना प्रगति अनिश्चित है, बीच-बीच में बाधाएँ आती रहती हैं और पहले ही अवसर पर कष्टकर पतन होते हैं :

सच्चाई, वफ़ादारी, विनम्रता और कृतज्ञता।

*"आश्रम का सच्चा बालक" कहलाने के लिए कौन-से गुण ज़रूरी हैं?*

सच्चाई, साहस, अनुशासन, सहिष्णुता, भागवत कार्य में सम्पूर्ण श्रद्धा और 'भागवत कृपा' में अटूट विश्वास। इन सबके साथ निरन्तर, तीव्र और अध्यवसायपूर्ण अभीप्सा और असीम धैर्य होना चाहिये।

*

आश्रम उनके लिए है जो अपने जीवन को भगवान् के अर्पण करना चाहते हों।

**'श्रीमातृवाणी'**, खण्ड १३, पृ. ११९

*... तुम्हें हर रोज़ एक प्रार्थना लिखनी चाहिये, ऐसी प्रार्थना जो तुम्हारी अभीप्सा को अभिव्यक्त करे या तुम्हारी कृतज्ञता को दर्शाये या तुम्हारी आराधना को, तुम जो प्रगति करना चाहती हो उसे व्यक्त करे। ज़रूरी नहीं है कि वह लम्बी हो, कुछ पंक्तियाँ हो सकती हैं; और यह तुम्हें अपने-आपको समझने में तुम्हारी सहायता करेगी। इस तरह लिखो मानों तुम श्रीअरविन्द या मेरे साथ सीधी बातचीत कर रही हो और इस तरह तुम उनके और मेरे साथ एक घनिष्ठता पैदा कर लोगी।...*

हुता की पुस्तक 'सफ़ेद गुलाब' से ***श्रीमाँ***

**'पुरोधा'**

# दैनन्दिनी

**जून**

१. तुम्हारे अन्दर पर्याप्त अभीप्सा और ऐसी प्रार्थना होनी चाहिये जो काफ़ी तीव्र हो। यह मानव प्रकृति को भागवत करुणा द्वारा दिया गया अद्‌भुत उपहार है; मनुष्य नहीं जानता कि उसका उपयोग कैसे किया जाये।

२. भागवत करुणा को ग्रहण करने के लिए तुम्हारे अन्दर न केवल बड़ी अभीप्सा होनी चाहिये बल्कि सच्ची नम्रता और पूर्ण विश्वास भी होना चाहिये।

३. साधक को एक बात हमेशा याद रखनी चाहिये कि सब कुछ आन्तरिक मनोभाव पर निर्भर करता है; अगर उसे भागवत कृपा पर पूर्ण श्रद्धा है तो वह देखेगा कि हर क़दम पर भागवत कृपा उससे उचित कार्य करवायेगी।

४. तुम्हारी श्रद्धा, सहृदयता और समर्पण जितने पूर्ण होंगे भागवत कृपा और रक्षा उतनी ही तुम्हारे साथ बनी रहेंगी।

५. एक ही बात है जिसका मूल्य है, वह है भगवान्, उनकी इच्छा, उनकी अभिव्यक्ति। हम यहाँ इसीलिए हैं, हम वही हैं, और कुछ नहीं।

६. अपने बारे में न सोचना, अपने लिए न जीना, किसी चीज़ का सम्बन्ध अपने साथ न जोड़ना, केवल उसी के बारे में सोचना जो सर्वसुन्दर है, ज्योतिर्मय, आनन्दमय, शक्तिमय, अनुकम्पामय और अनन्त है; इसमें इतना गभीर आनन्द है कि उसकी तुलना किसी अन्य वस्तु से नहीं की जा सकती।

७. अच्छे कार्य सम्मिलित और धीरज-भरे प्रयास से ही होते हैं।

८. जो कार्य आज नहीं हो पा रहा, वह कुछ समय बाद अवश्य होगा। प्रगति के लिए किया गया कोई भी प्रयास व्यर्थ नहीं हुआ है।

९. तुम जो भी कार्य करो पूरी सच्चाई के साथ करो, जितना पूर्ण कर सको उतना पूर्ण करो, निश्चय ही यह भगवान् की सेवा करने के

उत्तम उपायों में से एक है।

१०. तुम जो कुछ जानते हो उसे व्यवहार में लाओ, सीखने का ऐसा उत्तम उपाय और कोई नहीं है।

११. सरल और निष्ठावान् हृदय महान् वरदान है।

१२. मेधावी मनुष्य को उत्साह, अप्रमाद, संयम द्वारा अपने लिए ऐसे द्वीप का निर्माण करना चाहिये जिसे कोई बाढ़ डुबा न पाये।

१३. हम कुछ भी क्यों न करें, हमें अपने लक्ष्य को हमेशा याद रखना चाहिये।

१४. तुम टेनिस खेल सकते हो या और कुछ कर सकते हो फिर भी भगवान् के बारे में सोच सकते हो। भगवान् के साथ चेतना में सम्बन्ध रखने के लिए बैठ कर आँखें मूँदना ज़रूरी नहीं है।

१५. जब तुम उत्तेजित कोलाहल के बीच अनासक्त और अलग-थलग खड़े होकर उसे देखते हो, तभी तुम समझने वाली दृष्टि से उसकी सारी प्रक्रियाओं को देख सकते हो।

१६. हाँ, हमें अपनी चेतना का आधार उच्चतम सत्य पर रखना चाहिये और जो कुछ हम करें वहीं से करना चाहिये। निम्न, अन्धी, स्वार्थपूर्ण गतिविधियों तथा प्रतिक्रियाओं को अपना काम बिगाड़ने नहीं देना चाहिये।

१७. जब तुम किसी के साथ हो और निष्कपट हो, तो तुरन्त तुम्हारी प्रतिक्रिया यही होनी चाहिये कि तुम ठीक चीज़ करो, भले तुम जिसके साथ हो वह ठीक चीज़ न भी करे। सबसे सामान्य उदाहरण ले लो : कोई नाराज़ होता है; उसे चोट पहुँचाने वाली बातें कहने की जगह तुम चुप रहते हो, स्थिर और शान्त रहते हो। तुम्हें उसके ग़ुस्से की छूत नहीं लगती।

१८. अचञ्चल मन तेज़ी या बुदबुदाहट के बिना चीज़ों को देखता है, न हड़बड़ी करता है, न ऊटपटाँग बातें सोचता है।

१९. कष्ट को अस्वीकार कर दो। जो भी प्राणिक क्रिया तुम्हें माताजी से दूर ले जाये उसे स्वीकार मत करो। अपनी आन्तरिक सत्ता के साथ सदैव उन्हीं को पकड़े रखो और पूरा भरोसा रखते हुए कोई भी माँग या प्रश्न मत करो। —श्रीअरविन्द

२०. जब तक हम अपने अहंकार से छुटकारा नहीं पा लेते तब तक शान्ति नहीं हो सकती, न हमारे लिए, न औरों के लिए।

२१. भगवान् से प्रेम करने और धरती पर उनकी सेवा करने का सबसे अच्छा तरीक़ा है—अथक, स्पष्टदर्शी और व्यापक शुभ-चिन्ता जो सभी व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं से मुक्त हो।

२२. प्रत्येक दिवस, प्रत्येक क्षण नये और अधिक पूर्ण समर्पण के लिए एक अवसर होना चाहिये—गभीर और नीरव समर्पण का जो दिखायी तो न दे किन्तु जो गहरे पैठ कर समस्त कार्य को रूपान्तरित कर दे।

२३. प्रत्येक वस्तु में 'तुझे' ढूँढ़ना, प्रत्येक परिस्थिति में 'तुझे' अधिक-से-अधिक अच्छी तरह अभिव्यक्त करने की इच्छा करना; इसी मनोवृत्ति में परम शान्ति, पूर्ण प्रसन्नता और सच्चा सन्तोष है।

२४. जो प्रेम भगवान् की ओर जाता है उसके लिए भगवान् के पास हमेशा एक विलक्षण उत्तर होता है और सही उत्तर तुम्हें वह शान्ति, वह हर्ष तथा सामञ्जस्य देगा जिसके लिए तुम अभीप्सा करते हो।

२५. तुम्हें केन्द्रीय अभीप्सा को बनाये रखना चाहिये जो हमेशा सच्ची और निष्कपट होती है और अस्थायी असफलताओं के बावजूद मार्ग पर स्थिरता से बढ़ते रहना चाहिये, तब अनिवार्य रूप से परिवर्तन होगा।

२६. जब तुम जल्दबाज़ी में नहीं होते तो बहुत तेज़ी से बढ़ते हो।
वास्तव में आगे बढ़ने के लिए तुम्हें पूरे विश्वास के साथ अनुभव करना चाहिये कि समस्त शाश्वतता तुम्हारे सामने है।

२७. उत्साह से भरपूर रहना बहुत अच्छी बात है, कार्य में पवित्र होना भी अति आवश्यक है, सोच-विचार कर काम करना उत्तम है, परन्तु लोग बहुधा ऐसा नहीं कर पाते।

२८. अगर तुम पूरी सच्चाई के साथ भागवत इच्छा को व्यक्त करने के लिए कर्म करो तो बिना अपवाद के सभी कर्म निःस्वार्थ हो सकते हैं।

२९. कोई चीज़ कठिन है, इसका मतलब यह तो नहीं है कि तुम्हें उसे छोड़ देना चाहिये। इसके विपरीत, चीज़ जितनी कठिन हो उतना ही, उसे सफलता के साथ पूरा करने का तुम्हारा अन्दर संकल्प होना चाहिये।

३०. भगवान् की सत्ता में निवास कर, 'उनके' प्रकाश से चमक, 'उनकी' शक्ति से कार्य कर और 'उनके' आनन्द के साथ आनन्द मना।

**'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'**

# गहन विद्या

भविष्य की शिक्षा में आन्तरिक जगत् का ज्ञान एक महत्त्वपूर्ण विषय हो सकता है। श्रीअरविन्द ने कहा है कि यह ज्ञान शिक्षा का एक अंग होगा। प्राचीन भारत में यह गहन विद्या केवल कुछ लोगों को ही दी जाती थी परन्तु अब अतिमानस के अवतरण के बाद बहुत लोग इसे प्राप्त कर सकते हैं, मैं आजकल की बात नहीं कर रहा, इसमें सौ-पचास वर्ष लग सकते हैं। तब चेतना इतनी शुद्ध हो जायेगी कि गुह्य ज्ञान कई लोगों को दिया जा सकेगा और यह अधिकतर अन्दर से आयेगा।

अब हम इस ज्ञान की प्राप्ति की पद्धति पर आते हैं। माताजी और श्रीअरविन्द के मतानुसार हम यह ज्ञान कभी तर्क या निगमन द्वारा नहीं पा सकते। सच्चा ज्ञान तादात्म्य द्वारा आता है। उदाहरण के लिए, बाल-मनोविज्ञान में हमें बालक के साथ तदात्म होना होगा ताकि हम यह जान सकें कि वह क्या जानता है, वह क्या समझता है और क्या सोचता है। इसके बाद ही हम उसके विकास में सहायता दे सकते हैं। लेकिन बालक के साथ कैसे एकात्म हुआ जाये? यह शारीरिक रूप से तो हो नहीं सकता। तब फिर उपाय क्या है? हम सबको अर्जुन की कहानी याद होगी। द्रोणाचार्य ने यह जानने के लिए कि बाण-विद्या में सबसे अधिक प्रवीण कौन है एक परीक्षा की व्यवस्था की। एक वृक्ष पर एक चिड़िया दिखायी गयी जिसकी आँख पर निशाना लगाना था। द्रोण ने पूछा, "सब तैयार हैं? तुम लोग चिड़िया देख सकते हो, क्या तुम पेड़ देखते हो?" उन्होंने कहा, "हाँ", "तब तुम बाण चलाने-लायक़ नहीं हो", द्रोण बोले। फिर उन्होंने अर्जुन से पूछा, "क्या तुम पेड़ देख सकते हो।" अर्जुन ने कहा, "नहीं", फिर उन्होंने पूछा, "तुम्हें चिड़िया दिखायी देती है?" अर्जुन ने कहा, "नहीं, मुझे केवल चिड़िया की आँख दिखायी देती है।" आचार्य ने कहा, "तब तुम बेधने-लायक़ हो।" तो जब तुम किसी चीज़ या किसी व्यक्ति के साथ एकात्म होना चाहते हो तो तुम्हें उस चीज़, उस व्यक्ति, उस विचार या उस समस्या के ऊपर इस तरह केन्द्रित होना चाहिये कि तुम्हारी सारी चेतना उसी पर केन्द्रित रहे, तुम्हारा सारा ध्यान उसी पर लगा रहे। इस तरह की अभीप्सा या एकाग्रता के

साथ, माताजी कहती हैं कि तुमको ऐसा प्रतीत होता है कि एक द्वार खुल गया है और तुम चेतना के एक और स्तर पर चले गये हो। जब तुम एक व्यक्ति के साथ एकात्म हो जाते हो तो उसके बारे में सब कुछ जान लेते हो। चेतना का यह विपर्यय मन, प्राण और चैत्य के स्तर पर हो सकता है। अपने सामान्य जीवन में हम इन पद्धतियों का उपयोग नहीं करते। हम अपनी शिक्षा, व्यापार, राजनीतिक या सामाजिक जीवन में इनका उपयोग नहीं करते। इसी कारण इतनी ग़लतफ़हमियाँ, गड़बड़, लड़ाई-झगड़े आदि लगे रहते हैं। आन्तरिक स्तरों की समझ से हमारी गुप्त क्षमताओं का विकास और उपयोग शुरू होता है। दो और चीजें हैं जो हमें आन्तरिक स्तरों को समझने में सहायता देती हैं। एक है स्वप्नों का और दूसरा मृत्यु का तथ्य। स्वप्नों में हम अपनी भौतिक चेतना से छुट्टी पाकर विभिन्न आन्तरिक स्तरों पर जा सकते हैं जहाँ हम अपने विचारों के उन विभिन्न रूपों को देख सकते हैं जिनका अस्तित्व है। अगर हम आन्तरिक लोकों के बारे में जानते हैं तो स्वप्नों का अर्थ समझना आसान हो जाता है, यहाँ तक कि स्वप्नों पर अधिकार पाना भी आसान हो जाता है। यह कैसे होता है? मैं तुम लोगों को प्राचीन जातियों का एक उदाहरण देता हूँ। लेकिन पहले मैं यह कह दूँ कि हमें यह न मान बैठना चाहिये कि समस्त ज्ञान हमारे आधुनिक काल के मनोवैज्ञानिकों ने ही पाया है। हाँ, आज वह ज्ञान नियमानुसार वर्गीकृत किया गया है और उन्होंने बहुत उपयोगी काम किया है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि यह ज्ञान प्राचीन काल में था ही नहीं।

मलेशिया की एक जन-जाति में जब लोग सवेरे सोकर उठते हैं तो अग्नि के चारों ओर इकट्ठे हो जाते हैं। वे आदिवासी भले हों पर सभ्य-शिष्ट ज़रूर हैं, शायद आज के आदमी से कुछ बढ़ कर ही। बच्चे आकर अपने पिता, दादा को नमन करते हैं। पहला प्रश्न दादा यह पूछते हैं, "आज तुमने क्या स्वप्न देखा?" हमारे आधुनिक लोगों में शायद पिता उस समय अख़बार पढ़ रहा हो और बच्चे से कह बैठे कि गड़बड़ न करो, या कहे, "अच्छा आशीर्वाद।" परन्तु इस जाति में बँधा हुआ पहला प्रश्न है, "तुमने क्या स्वप्न देखा?" उनके मतानुसार यह बच्चे की शिक्षा का एक ज़रूरी मनोवैज्ञानिक अंग है। मान लो कि बच्चा कहता है, "मैंने तो एक शेर देखा।" दादा पूछेंगे, "तब क्या हुआ?" बच्चा कहेगा, "मैं

डर गया।" दादा कहेंगे, "अच्छा, अब अगली बार जब तुम शेर देखो तो डरना मत, आख़िर इस शेर का कोई शरीर तो है नहीं, वह केवल स्वप्न का शेर है। तुम उस पर उछल पड़ो और देखो क्या होता है।" इन बातों के लिखित प्रमाण हैं, मैं यूँ ही कल्पना की चीज़ें नहीं कह रहा। दो-तीन दिनों के बाद बच्चा आकर कहता है, "दादाजी, आज मैंने फिर से शेर देखा।" दादा—"और तुमने क्या किया?" बच्चा—"मैंने उसका सामना किया।" दादा—"तब क्या हुआ?" बच्चा—"शेर छोटा, छोटा और छोटा होता चला गया और फिर भाग गया।" यह सचमुच मज़ेदार है। माताजी ने अपनी एक पुस्तक में यही बात लिखी है। यह कैसे हुआ कि मलेशिया में—जिन लोगों ने कभी माताजी का नाम भी नहीं सुना, वे लोग इस चीज़ का अभ्यास कर रहे और समान परिणाम पा रहे हैं। तो जिन आन्तरिक स्तरों का अस्तित्व है और जिनके साथ तुम सम्पर्क साधित कर सकते हो वे न केवल तुम्हारे उस जीवन को प्रभावित कर सकते हैं जिसके बारे में तुम्हें लगता है कि उस पर तुम्हारा कोई वश नहीं, बल्कि एक बार योगाभ्यास करने के बाद तुम आन्तरिक स्तरों के साथ सम्पर्क साध सकते और अपने बाहरी जीवन पर अधिक अच्छी तरह शासन भी कर सकते हो। मैं तुमको एक और उदाहरण सुनाता हूँ जो दूसरे महायुद्ध के समय श्रीअरविन्द ने सुनाया था। वे अपनी चेतना को कुछ जनरलों की चेतना के साथ मिला कर परीक्षण करते थे। अगर श्रीअरविन्द ने उन जनरलों से यह या वह करने के लिए कहा होता तो वे उनकी बात पर कान न देते और फिर उनको युद्ध-क्रिया का कोई तकनीकी ज्ञान न था, परन्तु जब उन्होंने अपनी चेतना उन जनरलों की चेतना के साथ मिलायी तो उन लोगों को ठीक प्रेरणा मिलने लग गयी और उन्होंने विजय प्राप्त कर ली जो शायद अन्यथा न मिलती। श्रीअरविन्द ने स्पेन के एक जनरल का उदाहरण दिया है जो उनकी चेतना के प्रति बहुत ग्रहणशील था और एक दूसरा था जो बिलकुल ग्रहणशील न था। वाञ्छित परिणाम लाने के लिए केवल सञ्चारण की नहीं, दूसरे पक्ष की ग्रहणशीलता भी ज़रूरी है। अगर तुम यह तरीक़ा जानते हो तो तुम हर बच्चे का, अपने साथ मिलने वाले हर व्यक्ति का जीवन ज़्यादा अच्छा बना सकते हो और यह जगत् में सच्चा परिवर्तन होगा।

(क्रमशः)

—नवजातजी

# कृतज्ञतापूर्वक मुस्कुराते रहो

शोधकर्ताओं का कहना है कि एक शिशु दिन में ४०० बार मुस्कुराता है, किशोर १७ बार और प्रौढ़ कभी-कदास ही। अधिक सफल व्यक्तियों के चेहरों पर बहुत कठोर भाव दीखता है। क्या कठोरता सफलता का चिह्न है? क्या तनाव में रहना समृद्धि, विकास और प्रतिष्ठा का चिह्न है? तुम्हें मुस्कुराते ही रहना चाहिये। हर सवेरे, शीशे में देखो और अपने-आपको एक मधुर मुस्कान दो। क्या तुम जानते हो कि जब तुम मुस्कुराते हो तो क्या होता है? तुम्हारे चेहरे की सभी मांसपेशियाँ तनावरहित हो जाती हैं। तुम्हारे मस्तिष्क की स्नायुएँ ढीली पड़ जाती हैं और जीवन में आगे बढ़ने के लिए तुम विश्वास, साहस और ऊर्जा से लैस हो जाते हो। जानते हो, तुम्हारी मुस्कान कितनी भंगुर होती है? ज़रा सी बात की मार उसे ग़ायब कर देती है, अपने-आपको भावनाओं में इतना बह क्यों जाने देते हो तुम? क्या हैं उतार-चढ़ाव की ये भावनाएँ? उठाओ इन्हें, गट्ठर बना कर समुद्र में फेंक दो। एक बार तुम इन तथाकथित दुःखद भावनाओं से अपना पीछा छुड़ा लो तो सुखी हो सकोगे। तुम अपना मन मैला क्यों करते हो? क्योंकि किसी ने तुम्हारे बारे में कोई ऊलजलूल बात कह डाली! और क्यों उसने ऐसी बात की? क्योंकि उसके पास कुछ कूड़ा था और वह उसे फेंकना चाहता था, बस, तुमने उस कूड़े को लपक कर पकड़ लिया। और फिर दूसरों के द्वारा तुम पर फेंके गये कूड़े-करकट को तुम इतने आवेश के साथ अपने-आपसे चिपकाये रखते हो कि कोई हद नहीं! चलो, उठ खड़े होओ, किसी को तुम्हारी मुस्कान को छीनने न दो। सामान्यतः तुम अपने क्रोध के साथ बहुत उदार होते हो, बड़ी आसानी से उसे इधर-उधर बाँटते फिरते हो, लेकिन मुस्कान...? वह कभी-कदास ही तुम्हारे चेहरे पर छाती है, मानों वह इतनी महँगी चीज़ है कि तुम उसे पाने में समर्थ नहीं हो...। अगर तुम्हारे पास ज्ञान है तो तुम जान जाओगे कि बात ठीक उलटी है —एक मुस्कान का कोई दाम नहीं, जब कि क्रोध बहुत महँगा होता है। यह मत भूलो कि इस धरती पर तुम किसी महान् उद्देश्य के लिए आये हो। तो अपने-आपसे कहो, 'चाहे जो हो, आज मैं कल से ज़्यादा मुस्कुराऊँगा।'

अनु. वन्दना

—श्री श्री रवि शंकर

# किरन से एक मुकालमा[१]

अँधेरा डाँट कर बोला
सुनो सूरज की ए नन्हीं किरन
अब घर चली जाओ
तुम्हारी राजधानी पर हुकूमत अब मिरी होगी
किरन ने मुस्कुरा कर
देवकामत[२] और पुरहैबत[३]
अँधेरे पर नज़र डाली
तहम्मुल[४] से यकीं और हौसले को
भर के अपने नर्म लहजे में कहा,
देखो! चली तो जाऊँगी लेकिन
हर एक दिल में रहूँगी
इक नई उम्मीद की सूरत[५]
हर इक घर में मिलूँगी
तुमसे लड़ता इक दीया बन कर
सितारों से कभी झलकूँगी
उनकी रौशनी बन कर
कभी मैं चाँद से निकलूँगी
उसकी चाँदनी बन कर
सुनो
मैं जा के भी मौजूद हूँगी
और तुम
मौजूद होकर भी नहीं होगे।

—हुमैरा राहत

---

१. बातचीत २. जिन्न/दानव-जैसा डील-डौल ३. डरावना, भयानक
४. धैर्य, सन्तुष्टि ५. तरह

# कृतज्ञतापूर्ण अमृत

भगवान् बुद्ध बोधि-प्राप्ति के पश्चात् पहली बार ही कपिलवस्तु में पधारे हैं। नगर के बाहर आम्रवन में उनका निवास है। महाराज शुद्धोदन और माता महाप्रजापति देवी के हर्ष और उमंग का कोई पार नहीं है। यहाँ यशोधरा ने भी राहुल को सम्मुख करके उसे पिता का उत्तराधिकार दिलाया है। समूचे नगर में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द छा गया है। भगवान् के दर्शन के लिए, उनकी अमृत वाणी सुनने के लिए सभी नर-नारी आम्रवन की ओर दौड़े जा रहे हैं।

परन्तु एक व्यक्ति का दर्शन अभी तक हुआ नहीं। वह था बालसखा सुन्दरानन्द। पूछा, "भला सुन्दरानन्द अब तक क्यों नहीं दिखा?"

"आप जानते ही हैं भगवन्, वह शुरू से ही भोगविलासप्रिय है। और आपके संन्यास लेने के कारण वह इतना नाराज़ है कि उसने शपथ ले रखी है कि आपका मुख भी नहीं देखेगा।"

"ओहो! तब तो उसके मुखदर्शन के लिए अवश्य जाना चाहिये। मेरे बचपन का जो सखा है!"

दूसरे दिन हाथ में भिक्षापात्र लिये गौतम सुन्दरानन्द के महल की ओर निकल पड़े।

'अब क्या करना चाहिये? विवेक-विनय के हेतु भिक्षा देकर गौतम का सत्कार करना चाहिये?... लेकिन वह तो दम्भ होगा। जो अन्दर सो बाहर।' उसने द्वारपाल को हुक्म दे दिया कि गौतम को दरवाज़े से ही बाहर निकाल देना।

ऐसी कठोर आज्ञा देकर सुन्दरानन्द तो वसन्तोत्सव की कोमल-मधुर राग-रागिनियों में निमग्न हो गया। 'लेकिन आज ध्यान बीच-बीच में चलित क्यों हो रहा है! क्यों किसी बैरागी की शुष्क किन्तु शान्त-सौम्य छाया आँखों के सामने अलप-झलप आकर ख़लल पहुँचा रही है?'

इसी समय द्वारपाल उपस्थित हुआ। उसका चेहरा अहोभाव से दीप्त था, वाणी में कृतकृत्य हृदय की अनुकम्पा थी। "देव, भगवान् बुद्ध महल के द्वार पर पधारे थे।" मेरी ओर कृपापूर्ण दृष्टि से देख कर बोले, "मित्र! कल्याण हो तुम्हारा। ओह! उनकी आँखों में प्रेम कैसा छलक रहा था!

कहा, बन्धु सुन्दर को इतना कहना कि उसके परम कल्याण की चाह लिये मैं आया था, और उसी परम कल्याण की चाह लिये जा रहा हूँ।" द्वारपाल का भावदीप्त चेहरा वह देखता-का-देखता रह गया।

अब तो वह रंगीन, सरस नृत्यगान पूरी तरह से बेरंग, विरूप हो उठा। 'परम कल्याण की चाह' इन शब्दों ने उसके हृदय-पटल को भेद दिया। अपमान के बदले में आशीर्वाद देकर गये भिक्षु की मूर्ति उत्सव के रमणीय स्वरों के पार, मूक स्मित बिखरेती खड़ी दिखायी दी! मन बेचैन हो गया। कोई अदृष्ट शूल हृदय के आर-पार मानों बिंध रहा है। अन्तर में अनुताप की भट्टी सुलग उठी।

दूसरे दिन सुबह ही सुन्दरानन्द का रथ आम्रवन की ओर तीव्र गति से दौड़ता दिखायी दिया। अपने बालसखा को इस तरह विह्वल दशा में आते देख कर भगवान् स्वयं स्वागत के लिए आगे आये और उसे वत्सलता से अपने आलिंगन में भर लिया। इस मुण्डित-केशी, पीत-चीवरधारी, अवर्ण्य सौन्दर्य से दीप्त संन्यासी को सुन्दरानन्द निर्निमेष भाव से देखता ही रहा।

"मैं जानता हूँ, तुम्हें इस बात का दुःख है कि भोग-वैभव छोड़ कर शुष्क और नीरस जीवन का मार्ग मैंने अपनाया। लेकिन आनन्द, यह तुम्हारा बड़ा भ्रम है। मैंने मुदिता का त्याग करने को कभी नहीं कहा। उलटे, परम मुदिता की प्राप्ति के लिए मैंने संन्यास लिया। और सबको यही मार्ग दिखाता हूँ।..." ऐसा कहते हुए बुद्ध ने उसे अपने समीप बिठाया और उसको प्रेमपूर्वक निहारने लगे। उनके पारगामी तेजपूर्ण दृष्टिपात से तत्क्षण सुन्दरानन्द के भीतर के आवरण छिन्न-भिन्न हो गये और अन्तरदीप प्रज्वलित हो उठा। जीवन में पहली बार उसने अन्तर की शान्ति का अनुभव किया और तृप्त होकर घूँट-पर-घूँट वह कृतज्ञतापूर्ण अमृत पीने लगा।

'मैत्री' से साभार —मकरन्द दवे

कर्म-भूमि की दुनिया में,
श्रम सभी को करना है...
भगवान् सिर्फ़ लकीरें देते हैं,
रंग हमें ही भरना है।

# कृतज्ञता की मूर्ति

कहते हैं हिमालय साधु-सन्तों का प्रिय स्थल है। कितने ही तपस्वी यहाँ दिन-रात तपस्या में लीन रहते हैं। ऐसे ही एक तपस्वी हिमालय के एक निचले प्रदेश में एक गाँव के पास तपस्या करते थे। बहुत पहुँचे हुए सन्त थे, तपस्या के तेज से उनका चेहरा हमेशा दमकता रहता था, साक्षात् सौम्यता की मूर्ति थे वे। इसी कारण भक्तों का वहाँ ताँता लगा रहता था। भक्त भी अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार उन्हें भेंट-पूजा चढ़ाते थे। वहाँ से रोगी भले-चंगे होकर लौटते थे, दुःख के मारे प्रसन्नचित्त और दर्प के मद में डूबे नम्रता की मूर्ति बन कर आते थे। बड़ा ही प्रभाव था उन महात्मा का उस प्रदेश में।

एक दिन उनके सामने एक छोटा-सा बालक आ खड़ा हुआ। हाथ जोड़ कर बोला—"मुनिवर, कृपया मुझे सिद्धपुरुष बनने का मार्ग दिखा दीजिये। मेरे हृदय में भगवान् के प्रति श्रद्धा, विश्वास तथा अभीप्सा सब कुछ हैं।"

"लेकिन तुम तो अभी छोटे-से बच्चे हो। महान् आध्यात्मिक पुरुष बनने से पहले अभी तुम्हें और कई वसन्त देखने हैं। बच्चे, युवावस्था साधना के लिए उत्तम समय है। युवक बन कर मेरे पास आना, मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा।"

लेकिन बालक हठी था बोला—"जी, आपकी बात ठीक है कि मैं अभी बच्चा हूँ, लेकिन मैं इतनी शक्ति तो रखता हूँ कि साधना करके एक छोटा-सा आध्यात्मिक पुरुष बन सकूँ।"

बच्चे की निश्छल वाणी सुन कर, उसके सच्चे आग्रह को देख तपस्वी ने मुस्कुराते हुए कहा—"ठीक है, तुम जीते। इस तपस्या का पहला चरण है सभी सांसारिक वस्तुओं का त्याग, अपनी सारी सम्पत्ति, धन-दौलत प्रभु के चरणों में सौंप देना। इन सब भौतिक चीज़ों के लिए तुम्हारे अन्दर रत्ती-भर भी मोह-माया नहीं होनी चाहिये।"

बालक ने हँस कर कहा—"मुनिवर, बालक हूँ मैं, मेरे पास अपनी सम्पत्ति कहाने-लायक़ बस यह थोड़ी-सी मिठाई है, एक गेंद है और एक सीटी। लीजिये, इनके साथ यह रहा मैं। इनके साथ-ही-साथ मैं अपनी सभी कमज़ोरियों, अपने सारे अज्ञान को लेकर स्वयं को समर्पित कर रहा हूँ भगवती माता के चरणों में।"

तपस्वी ने प्रसन्न होकर कहा—"वाह! कितनी सुन्दर अभिव्यक्ति, कितना सरल मानस है पुत्र तुम्हारा।"

अचानक बालक पूछ बैठा—"आपने कभी भगवती माँ के दर्शन किये हैं?"

"हाँ, हाँ, एक बार, बस एक बार माँ के दर्शन प्राप्त हुए। ओह! भूल सकता है क्या कोई श्री-शोभा से युक्त उस लावण्यमयी मूर्ति को? आह! उनके चेहरे की वह मधुर मुस्कान, अरे, उसकी तो स्मृति-मात्र से मेरा अंग-अंग आज भी पुलकित हो उठता है।" विह्वल होकर तपस्वी बोल उठे।

और अचानक तपस्वी ने अपने सामने एक अद्‌भुत बालक को खड़ा देखा जिसके मुँह से यह वाणी फूट पड़ी—"अब जब फिर माँ भगवती दर्शन देने आयें तो न केवल उनके चरणों में अपने तन की अभीप्सा, मन के भाव तथा धन की तुच्छ भेंट चढ़ाना बल्कि उत्सर्ग कर देना अपनी तपस्या का फल, न्योछावर कर देना अपनी आध्यात्मिक सिद्धियाँ उनके चरणों में और उनके एकनिष्ठ बालक बन जाना। संसार का त्याग, भौतिक वस्तुओं का त्याग सरल है, लेकिन अपनी सिद्धि, अपनी उपलब्धि के फल को भी त्याग कर पूरी तरह से माँ के प्रति समर्पण सरल नहीं है। जब तक तुम यह नहीं कर पाओगे तब तक तुम्हारा उत्सर्ग, तुम्हारी साधना सम्पूर्ण न होगी।"

इतना कह कर बालक तपस्वी को कृतज्ञता की साक्षात् मूर्ति बना छोड़, चारों तरफ़ हँसी का फ़व्वारा बिखेरता हुआ न जाने कहाँ विलीन हो गया!

दूर से आती हुई वंशी-ध्वनि ने सारे वातावरण और बेसुध तपस्वी के तन-मन को आप्लावित कर दिया।

—वन्दना

## पहुँची क्या पहुँची!!!

*एक व्यक्ति ने अपनी पत्नी को पहुँची (हाथ का आभूषण) भेजी और पत्नी से पूछा, जो पहुँची हमने तुमको भेजी वह पहुँची कि नहीं पहुँची? पत्नी ने उत्तर दिया कि जो पहुँची तुमने भेजी वह पहुँची हमको आ पहुँची और पहुँची तो क्या पहुँची जो पहुँचे (कलाई) तक न पहुँची...*

*—जी.पी.रावत (मथुरा)*

# सर्वस्व समर्पण

मैं घर-घर भीख माँगने के लिए गाँवों में गया हुआ था। तभी तेरा स्वर्ण-रथ मुझे दिखायी पड़ा और मुझे उम्मीद बँधी कि मेरे बुरे दिनों का अब अन्त होने वाला है। तेरा रथ मेरे पास आकर रुका और मैं बिना माँगे दान की प्रतीक्षा में तेरे सामने जाकर खड़ा हो गया। तेरी दृष्टि मुझ पर पड़ी और तू मुस्कुराता हुआ रथ से उतर आया। मैंने समझा कि मेरा सौभाग्य मेरे पास आ गया, पर उलटे तूने ही मेरे सामने हाथ पसार दिया। कैसा परिहास किया तूने भी—भिक्षुक से भिक्षा माँगी! मैं बड़ी उलझन में पड़ गया। दबे मन से मैंने झोली से अन्न का एक दाना निकाल कर तुझे दे दिया। वह दाना लेकर तू चला गया और मैं निराशा से भर उठा, पर सूर्यास्त के समय जब मैंने झोली ख़ाली की, तो उसमें से सोने का एक दाना निकला। मैं जोर-ज़ोर से रोने लगा—काश, मैंने तुझे सर्वस्व समर्पित कर दिया होता!

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

**अग्निशिखा**

**श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका**

वार्षिक शुल्क : एक वर्ष—२००रु.; तीन वर्ष—५८०रु.; पाँच वर्ष—९६०रु.

संस्थापक : श्रीअरविन्द सोसायटी

मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस

प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी

प्रकाशक स्थल : सोसायटी हाउस, ११ सैं मार्तैं स्ट्रीट, पुदुच्चेरी ६०५००१

मुद्रण-स्थल : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, नं. ३८, गूबैर ऐवेन्यू, पुदुच्चेरी ६०५००१, भारत

**सम्पादिका : वन्दना**

Registered with the Registrar of Newspapers for India: No. 18135/70

दूरभाष संख्याएँ (०४१३) २३३६३९६-९७-९८

Email: info@aurosociety.org

Website: www. aurosociety.org

शान्त रहो और शान्ति के साथ विश्वासपूर्वक अपना उत्सर्ग कर दो।

जो कुछ होता है वह हमेशा परम प्रभु की इच्छा का प्रभाव होता है।

मानव कर्म अवसर तो है परन्तु कारण कभी नहीं।

*

एक परम चेतना है जो अभिव्यक्ति पर शासन करती है। निश्चय ही उसकी बुद्धि हमारी बुद्धि से बहुत महान् है। इसलिए हमें यह चिन्ता न करनी चाहिये कि क्या होगा।

**श्रीमाँ**

*शुभ कामनाओं सहित*

**श्रीअरविन्द सोसाइटी राजस्थान राज्य समिति,**
**जयपुर ३०२०१९ (राजस्थान)**
www.aurosocietyrajasthan.org

Sri Aurobindo Society

## पुदुचेरी में श्रीअरविन्द की १५० वीं जयन्ती के समारोह का उद्घाटन

श्रीअरविन्द सोसाइटी, पांडिचेरी द्वारा आयोजित श्री अरविन्द की १५० वीं जयन्ती के समारोह का उद्घाटन दिनांक २४ अप्रैल २०२२ को भारत के माननीय गृह मंत्री श्री अमित शाह द्वारा किया गया। समारोह का आयोजन पांडिचेरी विश्वविद्यालय के सभागार में किया गया था।

समारोह का आरम्भ राष्ट्र गान से किया गया। श्री विजय पोद्दार ने अपने संक्षिप्त स्वागत भाषण में सोसाइटी द्वारा बहुपक्षीय क्षेत्रों में किये जा रहे व्यापक कार्यक्रमों की चर्चा की जिनका मुख्य उद्देश्य है श्री अरविन्द की शिक्षाओं को गहराई और विस्तार के साथ फैलाने के लिए श्रीमाँ द्वारा दिये आदेश का पालन करना।

मंच पर बैठे सभी प्रतिष्ठित व्यक्तियों को इस अवसर के लिए विशेष रूप से तैयार किया गया मेमेण्टो प्रदान कर उनका अभिनन्दन किया गया। मंच पर बैठे थे श्री अरविन्द सासायटी के पदाधिकारी सदस्य श्री विजय पोद्दार, श्री अरविन्द आश्रम के मैनेजिंग ट्रस्टी श्री मनोज दास गुप्ता, पुदुचेरी विधान सभा के अध्यक्ष श्री आर.सेलवम, पुदुचेरी के मुख्य मंत्री श्री रंगासामी, श्रीअरविन्द सोसाइटो के चेयरमैन श्री प्रदीप नारंग, मुख्य अतिथि भारत सरकार के माननीय गृह मंत्री श्री अमित शाह, पुदुचेरी राज्य के उपराज्यपाल डॉ. तमिली साई सौन्दरराजन, पुदुचेरी राज्य के गृह मंत्री श्री नमोशिवयम, पुदुचेरो विधान सभा के सदस्य श्री पीएमएल कल्याण सुन्दरम्, पुदुचेरो के मुख्य सचिव श्री अश्विनी कुमार तथा पांडिचेरी विश्वविद्यालय के उपकुलपति श्री गुरमीत सिंह।

श्री प्रदोप नांरग ने २४ अप्रैल के महत्व पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि श्रीमाँ ने एक स्थान पर यह स्पष्ट किया है कि कुछ दिव्य शक्तियाँ २४ अप्रैल जैसी महान तिथियों पर मानवता के विकास में सहायता करने और उनकी चेतना को ऊपर उठाने के लिए नीचे उतरती हैं। उन्होंने यह भी बताया कि सोसायटी ने श्री अरविन्द की विशद रचनाओं के प्रकाश में भारतीय संविधान से सम्बन्धित एक गहन शोध कार्य किया है जिसमें संविधान में निहित भारतोय सभ्यता के विकास के कुछ पक्षों पर शोध ग्रन्थ "श्री अरविन्द तथा भारत का संविधान " के प्रत्येक पृष्ठ पर श्रीअरविन्द के प्रासंगिक उद्धरणों द्वारा विशेष प्रकाश डाला गया है। बृहत् तथा चित्रमय यह शोध ग्रन्थ जो विशेष रूप से इसी अवसर के लिए तैयार किया गया है – मंच पर बैठे सभी उच्च पदाधिकारियों को भेंट किया गया।

मुख्य अतिथि सम्मानीय केन्द्रीय गृह मंत्री श्री अमित शाह ने संक्षेप में श्री अरविन्द के जीवन और कार्य पर बड़े भावपूर्ण शब्दों में प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि "यदि किसी को भारत की आत्मा को समझना हो तब उसे श्री अरविन्द की रचनाओं को अवश्य पढ़ना चाहिये। श्रोतागण उनका भाषण सुनकर बहुत प्रभावित हुए।

राष्ट्रीय गान के साथ कार्यक्रम समाप्त हुआ।

Date of Publication: 1st June 2022
Rs. 30 (Monthly)

Registered: PY/47/2021-23
RNI No. 18135/70

मुखपृष्ठ-पुष्प

## कृतज्ञता

*मुखपृष्ठ के पुष्प का श्रीमाँ द्वारा दिया गया आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या*

*तुम्हीं हो जो सभी बन्द द्वारों को खोल देती और रक्षा करने वाली भागवत कृपा को प्रवेश करने देती है।*

*वानस्पतिक नाम :* Ipomoea Carmea